तुलसीको स्वप्नमें शङ्खचूड़के दर्शन, शङ्खचूड़ तथा तुलसीके विवाहके लिये ब्रह्माजीका दोनोंको आदेश, तुलसीके साथ शङ्खचूड़का गान्धर्व-विवाह तथा देवताओंके प्रति उसके पूर्वजन्मका स्पष्टीकरण

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक समयकी बात है। वृषध्वजकी कन्या तुलसी अत्यन्त प्रसन्न होकर शयन कर रही थी। उसने स्वप्नमें एक सुन्दर वेषवाले पुरुषको देखा। वह पुरुष अभी पूर्ण नवयुवक था। उसके मुखपर मुस्कान छायी थी। उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दनका अनुलेपन था। रत्नमय आभूषण उसे सुशोभित कर रहे थे। उसके गलेमें सुन्दर माला थी। उसके नेत्र-भ्रमर तुलसीके मुख-कमलका रस-पान कर रहे थे।

मुने! यों स्वप्न देखनेके पश्चात् तुलसी जगकर विषाद करने लगी। इस प्रकार तरुण अवस्थासे सम्पन्न वह देवी वहीं रहकर समय व्यतीत कर रही थी। नारद! उसी समय महान् योगी शङ्खचूड़का बदरीवनमें आगमन हो गया। जैगीषव्यमुनिकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र उसे प्राप्त हो चुका था। उसने पुष्करक्षेत्रमें रहकर उस मन्त्रको सिद्ध भी कर लिया था। सर्वमङ्गलमय कवचसे उसके गलेकी शोभा हो रही थी। ब्रह्मा उसे अभिलषित वर दे चुके थे और उन्हींकी आज्ञासे वह वहाँ आया भी था। वह आ रहा था, तभी तुलसीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। उसकी सुन्दर कमनीय कान्ति थी। उसकी कान्ति श्वेत चम्पाके समान थी। रत्नमय अलंकारोंसे वह अलंकृत था। उसके मुखकी शोभा शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तुलना कर रही थी। नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानो शरत्कालके प्रफुल्ल कमल हों। दो रत्नमय कुण्डल उसके गण्डस्थलकी छबि बढ़ा रहे थे। पारिजातके पुष्पोंकी माला उसके गलेको सुशोभित कर रही थी और उसका मुखकमल मुस्कानसे भरा था। कस्तूरी और कुङ्कुमसे युक्त सुगन्धपूर्ण चन्दनद्वारा उसके अङ्ग अनुलिप्त थे। मनको मुग्ध कर देनेवाला वह शङ्खचूड़ अमूल्य रत्नोंसे बने हुए विमानपर विराजमान था।

इस शङ्खचूड़को देखकर तुलसीने वस्त्रसे अपना मुख ढँक लिया। कारण, लज्जावश उसका मुख नीचेकी ओर झुक गया था। शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमा उसके निर्मल दिव्य चन्द-जैसे मुखके सामने तुच्छ थे। अमूल्य रत्नोंसे बने हुए नूपुर उसके चरणोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह मनोहर त्रिवलीसे सम्पन्न थी। सर्वोत्तम मणिसे निर्मित करधनी सुन्दर शब्द करती हुई उसकी कमरमें सुशोभित थी। मालतीके पुष्पोंकी मालासे सम्पन्न केश-कलाप उसके मस्तकपर शोभा पा रहे थे। उसके कानोंमें अमूल्य रत्नोंसे बने हुए मकराकृत कुण्डल थे। सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हार उसके वक्षःस्थलको समुज्ज्वल बना रहा था। रत्नमय कंकण, केयूर, शङ्ख और अँगूठियाँ उस देवीकी शोभा बढ़ा रही थीं। साध्वी तुलसीका आचरण अत्यन्त प्रशंसनीय था। ऐसे भव्य शरीरसे शोभा पानेवाली उस सुन्दरी तुलसीको देखकर शङ्खचूड़ उसके पास आकर बैठ गया और मीठे शब्दोंमें बोला।

शङ्खचूड़ने पूछा—देवि! तुम कौन हो? तुम्हारे पिता कौन हैं? तुम अवश्य ही सम्पूर्ण स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं समादरकी पात्र हो। समस्त मङ्गल प्रदान करनेवाली कल्याणि! तुम वास्तवमें हो कौन? सदा सम्मान पानेवाली सुन्दरि! तुम अपना परिचय देनेकी कृपा करो।

नारद! सुन्दर नेत्रोंसे शोभा पानेवाली तुलसीने शङ्खचूड़के ऐसे वचनको सुनकर मुख नीचेकी ओर झुकाकर उससे कहना आरम्भ किया।

तुलसीने कहा—भद्रपुरुष! मैं राजा धर्मध्वजकी कन्या हूँ। तपस्या करनेके विचारसे इस तपोवनमें ठहरी हुई हूँ। तुम कौन हो? यहाँसे सुखपूर्वक चले जाओ; क्योंकि उच्च कुलकी किसी भी अकेली साध्वी कन्याके साथ एकान्तमें कोई भी कुलीन पुरुष बातचीत नहीं करता—ऐसा नियम मैंने श्रुतिमें सुना है। जो कलुषित कुलमें उत्पन्न है तथा जिसे धर्मशास्त्र एवं श्रुतिका अर्थ सुननेका कभी सुअवसर नहीं मिला, वह दुराचारी व्यक्ति ही कामी बनकर परस्त्रीकी कामना करता है। स्त्रीकी मधुर वाणीमें कोई सार नहीं रहता। वह सदा अभिमानमें चूर रहती है। वास्तवमें वह विषसे भरे हुए घड़ेके समान है, परंतु उसका मुख ऐसा जान पड़ता है मानो सदा अमृतसे भरा हो। संसाररूपी कारागारमें जकड़नेके लिये वह साँकल है। स्त्रीको इन्द्रजाल-स्वरूपा तथा स्वप्नके समान मिथ्या कहते हैं। बाहरसे तो यह अत्यन्त सुन्दरता धारण करती है, परंतु उसके भीतरके अङ्ग कुत्सित भावोंसे भरे रहते हैं। उसका शरीर विष्ठा, मूत्र, पीब और मल आदि नाना प्रकारकी दुर्गन्धपूर्ण वस्तुओंका आधार है। रक्तरञ्जित तथा दोषयुक्त यह शरीर कभी पवित्र नहीं रहता। सृष्टिकी रचनाके समय ब्रह्माने मायावी व्यक्तियोंके लिये इस मायास्वरूपिणी स्त्रीका सृजन किया है। मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके लिये यह विषका काम करती है। अतः मोक्ष चाहनेवाले व्यक्ति उसे देखना भी नहीं चाहते।

नारद! शङ्खचूड़से इस प्रकार कहकर तुलसी चुप हो गयी। तब शङ्खचूड़ हँसकर कहने लगा।

शङ्खचूड़ने कहा—देवी! तुमने जो कुछ कहा है, वह असत्य नहीं है। पर अब मेरी कुछ सत्यासत्यमिश्रित बातें सुननेकी कृपा करो। विधाताने दो प्रकारकी स्त्रियोंका निर्माण किया है—वास्तव-स्वरूपा और दूसरी कृत्या-स्वरूपा। दोनों ही एक समान मनोहर होती हैं, पर एकको प्रशस्त कहते हैं और दूसरीको अप्रशस्त। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री और राधिका—ये पाँच देवियाँ सृष्टिसूत्र हैं—सृष्टिकी मूल कारण हैं। इन आद्या देवियोंके प्रादुर्भावका प्रयोजन केवल सृष्टि करना है। इनके अंशसे प्रकट गङ्गा आदि देवियाँ वास्तव-रूपा कहलाती हैं। इनको श्रेष्ठ माना जाता है। ये यशःस्वरूपा और सम्पूर्ण मङ्गलोंकी जननी हैं। शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरपत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कोटिवी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गङ्गा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मङ्गलचण्डी, धर्म-पत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षमा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, दिवा, रात्रि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा—स्त्रीरूपमें प्रकट ये देवियाँ प्रत्येक युगमें उत्तम मानी जाती हैं।

जो स्वर्गकी दिव्य अप्सराएँ हैं, वे कृत्या-स्वरूपा हैं, उन्हें अप्रशस्त कहा गया है। अखिल विश्वमें पुँश्चली-रूपसे ये विख्यात हैं। स्त्रियोंका जो सत्त्वप्रधान रूप है, वही स्वभावतः शुद्ध है; उसीको उत्तम माना जाता है। विश्वमें इन साध्वीरूपा स्त्रियोंकी प्रशंसा की गयी है। विद्वान् पुरुष कहते हैं, इन्हींको 'वास्तव-रूपा' जानना चाहिये। कृत्या स्त्रियोंके दो भेद हैं—रजोमय-रूपा और तमोमय-रूपा। सुन्दरि! जो रजोमय-रूपवाली स्त्रियाँ हैं, उनमें निम्नाङ्कित कारणोंसे ही साध्वीपन रहता है—परपुरुषसे मिलनेके लिये स्थानका न होना, अवसर न मिलना, किसी मध्यवर्ती दूत या दूतीका न होना, शरीरमें क्लेशका होना, रोगका होना, सत्सङ्गका लाभ होना, बहुत-से जनसमुदायद्वारा घिरी रहना तथा शत्रु अथवा राजासे भयका प्राप्त होना। इन्हीं कारणोंसे वे अपने सतीत्वकी रक्षा कर पाती हैं।

मनीषी पुरुषोंका कथन है कि स्त्रियोंका यह रूप मध्यम है। जो तमोमय-रूपवाली स्त्रियाँ हैं, उन्हें कुमार्गपर जानेसे रोक पाना बहुत कठिन होता है। विद्वानोंके मतमें यह स्त्रियोंका अधम रूप है। देवि! तुमने जो कहा है, सत् और असत्का विचार रखनेवाले कुलीन पुरुष निर्जन, निर्जल अथवा एकान्त स्थानमें किसी परस्त्रीसे कुछ भी नहीं पूछते, सो ठीक है; मैं भी यही मानता हूँ। परंतु शोभने! मैं तो इस समय ब्रह्माकी आज्ञा पाकर ही तुम्हारे कार्यसाधनके लिये तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्व-विवाहकी विधिके अनुसार तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनाऊँगा। देवताओंमें भगदड़ मचा देनेवाला शङ्खचूड़ मैं ही हूँ। दनुवंशमें मेरी उत्पत्ति हुई है। विशेष बात तो यह है कि मैं पूर्वजन्ममें श्रीहरिके साथ रहनेवाला उन्हींका अंश सुदामा नामक गोप था। जो सुप्रसिद्ध आठ गोप भगवान्के स्वयं पार्षद थे, उनमें एक मैं ही था। देवी राधिकाके शापसे इस समय मैं दानवेन्द्र बना हूँ। भगवान् श्रीकृष्णका मन्त्र मुझे इष्ट है, अतः पूर्वजन्मकी बातोंको मैं जान जाता हूँ। तुम भी पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णके पास रहनेवाली तुलसी थी। यह जाननेकी योग्यता तो तुम्हें भी प्राप्त है। तुम भी जो भारतवर्षमें उत्पन्न हुई हो, इसमें मुख्य कारण श्रीराधिकाका रोष ही है।

मुनिवर! जब इस प्रकार कहकर शङ्खचूड़ चुप हो गया, उस समय तुलसीका मन हर्षसे उल्लसित हो उठा, उसके मुखपर मुसकराहट छा गयी। तब उसने यों कहना आरम्भ किया।

तुलसीने कहा—इस प्रकारके सद्विचारसे सम्पन्न विज्ञ पुरुष ही विश्वमें सदा प्रशंसित होते हैं। स्त्री ऐसे ही सत्पतिकी निरन्तर अभिलाषा करती है। सचमुच ही इस समय मैं आपके सद्विचारसे परास्त हो गयी। निन्दाका पात्र तथा अपवित्र तो वह पुरुष माना जाता है, जिसे स्त्रीने जीत लिया हो। स्त्रीजित मनुष्यकी तो पितर, देवता तथा बान्धव—सभी निन्दा करते हैं। यहाँ-तक कि माता, पिता तथा भ्राता भी मन-ही-मन तथा वाणीद्वारा भी उसकी निन्दा करनेसे नहीं चूकते। जिस प्रकार जन्म तथा मृत्युके अशौचमें ब्राह्मण दस दिनोंपर शुद्ध हो जाता है, क्षत्रिय बारह दिनोंपर और वैश्य पंद्रह दिनोंपर शुद्ध होते हैं तथा शूद्रोंकी शुद्धि एक महीनेपर होती है, वैसे ही गान्धर्व-विवाह-सम्बन्धी पति-पत्नीकी संतान भी समयानुसार शुद्ध हो जाती है। उसमें वर्णसंकर-दोष नहीं आ सकता। यह बात शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। स्त्रीजित मनुष्यकी तो आजीवन शुद्धि नहीं होती। चितापर जलते समय ही वह इस पापसे मुक्त होता है। स्त्रीजित मनुष्यके पितर उसके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते। देवता भी उसके समर्पण किये हुए पुष्प और जल आदिके लेनेमें सम्मत नहीं होते। जिसके मनको स्त्रीने हरण कर लिया है, उस व्यक्तिको ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या लाभ हुआ? मैंने विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही आपकी परीक्षा की है। कारण, कामिनी स्त्रीका प्रधान कर्तव्य है कि कान्तकी परीक्षा करके ही उसे पतिरूपमें स्वीकार करे।

गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, कुरूप, परम क्रोधी, अशोभन मुखवाले, पङ्गु, अङ्गहीन, नेत्रहीन, बधिर, जड, मूक तथा नपुंसकके समान पापी वरको जो अपनी कन्या देता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। शान्त, गुणी, नवयुवक, विद्वान् तथा साधुस्वभाववाले वरको अपनी कन्या अर्पण करनेवाले पुरुषको दस अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति कन्याको पाल-पोसकर विपत्तिवश अथवा धनके

लोभसे बेच देता है, वह 'कुम्भीपाक' नरकमें पचता है*। उस पापीको नरकमें भोजनके स्थानपर कन्याके मल-मूत्र प्राप्त होते हैं। कीड़ों और कौओंद्वारा उसका शरीर नोचा जाता है। बहुत लम्बे समयतक वह कुम्भीपाक नरकमें रहता है। फिर जगत्में जन्म पाकर उसका रोगग्रस्त रहना निश्चित है।

तपको ही सर्वस्व माननेवाले नारद! इस प्रकार कहकर देवी तुलसी चुप हो गयी।

इतनेमें ब्रह्माजीने आकर कहा—शङ्खचूड़!

तुम इस देवीके साथ क्या बातचीत कर रहे हो? अब गान्धर्व-विवाहके नियमानुसार इसे पत्नीरूपसे स्वीकार कर लेना तुम्हारे लिये परम आवश्यक है; क्योंकि तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह साध्वी देवी भी कन्याओंमें रत्न समझी जाती है। इसके बाद ब्रह्माजीने तुलसीसे कहा—'पतिव्रते! तुम ऐसे गुणी पतिकी क्या परीक्षा करती हो? देवता, दानव और असुर—सबको कुचल डालनेकी इसमें शक्ति है। जिस प्रकार भगवान् नारायणके पास लक्ष्मी, श्रीकृष्णके पास राधिका, मेरे पास सावित्री, भगवान् वाराहके पास पृथ्वी, यज्ञके पास दक्षिणा, अत्रिके पास अनसूया, नलके पास दमयन्ती, चन्द्रमाके पास रोहिणी, कामदेवके पास रति, कश्यपके पास अदिति, वसिष्ठके पास अरुन्धती, गौतमके पास अहल्या, कर्दमके पास देवहूति, बृहस्पतिके पास तारा, मनुके पास शतरूपा, अग्निके पास स्वाहा, इन्द्रके पास शची, गणेशके पास पुष्टि, स्कन्दके पास देवसेना तथा धर्मके पास साध्वी मूर्ति पत्नीरूपसे शोभा पाती हैं, वैसे ही तुम भी इस शङ्खचूड़की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओ। शङ्खचूड़की मृत्युके पश्चात् तुम पुनः गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णके पास चली जाओगी और फिर वैकुण्ठमें चतुर्भुज भगवान् विष्णुको प्राप्त करोगी।†'

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! शङ्खचूड़ और तुलसीको इस प्रकार आशीर्वाद-रूपमें आज्ञा देकर ब्रह्माजी अपने लोकमें चले गये। तब शङ्खचूड़ने गान्धर्व-विवाहके अनुसार तुलसीको अपनी पत्नी बना लिया। उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। आकाशसे पुष्प बरसने लगे। तदनन्तर शङ्खचूड़ अपने भवनमें जाकर तुलसीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

अपनी चिरसङ्गिनी धर्मपत्नी परम सुन्दरी तुलसीके साथ आनन्दमय जीवन बिताते हुए राजाधिराज प्रतापी शङ्खचूड़ने दीर्घकालतक राज्य किया। देवता, दानव, असुर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस—सभी शङ्खचूड़के शासनकालमें सदा शान्त रहते थे। अधिकार छिन जानेके कारण देवताओंकी स्थिति भिक्षुक-जैसी हो गयी थी। अतः वे सभी अत्यन्त उदास होकर ब्रह्माकी सभामें गये और अपनी स्थिति बतलाकर बार-बार अत्यन्त विलाप

* यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयं यदि। विपदा धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति॥
(प्रकृतिखण्ड १६। ९८)

† पश्चात् प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च। चतुर्भुजं च वैकुण्ठे शङ्खचूडे मृते सति॥
(प्रकृतिखण्ड १६। ११४)

करने लगे। तब विधाता ब्रह्मा देवताओंको साथ लेकर भगवान् शंकरके स्थानपर गये। वहाँ पहुँचकर मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सर्वेश शिवसे सभी बातें कह सुनायीं। फिर ब्रह्मा और शंकर देवताओंको साथ लेकर वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए। वैकुण्ठ परम धाम है। यह सबके लिये दुर्लभ है। वहाँ बुढ़ापा और मृत्युका प्रभाव नहीं है। भगवान् श्रीहरिके भवनका प्रवेशद्वार परम श्रेष्ठ है। वहाँ पहुँचकर रत्नमय सिंहासनपर बैठे हुए द्वारपालोंको जब देखा, तब इन ब्रह्मादि देवताओंका मन आश्चर्यसे भर गया। वे सभी परम सुन्दर थे। सभी पीताम्बर धारण किये हुए थे। रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। सबके गलेमें दिव्य वनमाला लहरा रही थी; सुन्दर शरीर श्याम रंगके थे। उनके शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजाएँ थीं और प्रसन्न वदन मुस्कानसे भरे थे। उन मनोहर द्वारपालोंके नेत्र कमलके सदृश विशाल थे।

उन द्वारपालोंसे अनुमति पाकर ब्रह्मा क्रमशः सोलह द्वारोंको पार करके भगवान् श्रीहरिकी सभामें पहुँचे। उस सभाभवनमें चारों ओर देवर्षि तथा पार्षद विराजमान थे। सभी पार्षदोंके चार भुजाएँ थीं; सबका रूप भगवान् नारायणके समान था और सभी कौस्तुभमणिसे अलंकृत थे। वह सभा बाहरसे पूर्ण चन्द्रमण्डलके आकारकी गोल और भीतरसे चौकोर थी। बड़ी मनोहर दिखायी देती थी। श्रेष्ठ रत्नोंके सारभूत सर्वोत्तम दिव्य मणियोंसे उसका निर्माण हुआ था। हीरोंके सारभागसे ही वह सजी हुई थी। श्रीहरिके इच्छानुसार बने हुए उस भवनमें अमूल्य दिव्य रत्न जड़े गये थे। माणिक्य-मालाएँ जालीके रूपमें शोभा दे रही थीं और दिव्य मोतियोंकी झालरें उसकी छबि बढ़ा रही थीं। मण्डलाकार करोड़ों रत्नमय दर्पणोंसे वह सभा सुशोभित थी। उसकी दीवारोंमें लिखित अनेक प्रकारके विचित्र चित्र उसकी सुन्दरता बढ़ा रहे थे। सर्वोत्कृष्ट पद्मराग-मणिसे निर्मित कृत्रिम कमलोंसे वह परम सुशोभित थी। स्यमन्तकमणिसे बनी हुई सैकड़ों सीढ़ियाँ उस भवनकी शोभा बढ़ाती थीं। रेशमकी डोरीमें गुँथे हुए दिव्य चन्दन-वृक्षके सुन्दर पल्लव वन्दनवारका काम दे रहे थे। यहाँके खंभोंका निर्माण इन्द्रनील-मणिसे हुआ था। उत्तम रत्नोंसे भरे कलशोंसे संयुक्त वह सभा अत्यन्त मनोरम जान पड़ती थी। पारिजात-पुष्पोंके बहुत-से हार उसे अलंकृत किये हुए थे। कस्तूरी एवं कुङ्कुमसे युक्त सुगन्धपूर्ण चन्दनके द्रवसे वह भवन सुसज्जित तथा सुसंस्कृत किया गया था। सुगन्धित वायुसे वह सभा सब ओरसे सुवासित थी। उसका विस्तार एक सहस्र योजन था। सर्वत्र सेवक खड़े थे। वहाँ सभी कुछ दिव्य था। सभी उस सभाभवनको देखकर मुग्ध हो गये।

नारद! भगवान् श्रीहरि उस अनुपम सभाके मध्य भागमें इस प्रकार विराजमान थे मानो नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हो। देवताओंसहित ब्रह्मा और शंकरने उनके साक्षात् दर्शन किये। उस समय श्रीहरि दिव्य रत्नोंसे निर्मित अद्भुत सिंहासनपर विराजित थे। दिव्य किरीट, कुण्डल और वनमालाने उनकी छबिको और भी अधिक बढ़ा दिया था। उनके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे अनुलिप्त थे। एक हाथमें कमल शोभा पा रहा था। भगवान्‌का श्रीविग्रह अतिशय शान्त था। लक्ष्मीजी उनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न थीं। भक्तके दिये हुए सुवासित ताम्बूलको प्रभु चबा रहे थे। देवी गङ्गा उत्तम भक्तिके साथ सफेद चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। उपस्थित समाज अत्यन्त भक्तिविनम्र होकर उनका स्तव-गान कर रहा था।

मुने! ऐसे परम विशिष्ट परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिके दर्शन प्राप्त होनेपर ब्रह्मा प्रभृति समस्त भगवद्भक्त देवता भयभीत-से होकर भक्तिभावसे गर्दन झुकाये उन्हें प्रणाम करके स्तुति करने लगे। उस समय हर्षके कारण उनके सर्वाङ्गमें पुलकावली छा गयी थी, आँखोंमें आँसू भर आये थे और वाणी गद्गद थी। परम श्रद्धाके साथ उपासना करके जगत्के व्यवस्थापक ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर बड़ी विनयके साथ भगवान् श्रीहरिके सामने सारी परिस्थिति निवेदित की। श्रीहरि सर्वत्र एवं सबके अभिप्रायसे पूर्ण परिचित हैं। ब्रह्माकी बात सुनकर उनके मुखपर हँसी छा गयी और उन्होंने मनको मुग्ध करनेवाला अद्भुत रहस्य कहना आरम्भ किया।

भगवान् श्रीहरि बोले—ब्रह्मन्! यह महान् तेजस्वी शङ्खचूड़ पूर्वजन्ममें एक गोप था। यह मेरा ही अंश था। मेरे प्रति इसकी अटूट श्रद्धा थी। इसके सम्पूर्ण वृत्तान्तसे मैं पूर्ण परिचित हूँ। यह वृत्तान्त एक पुराना इतिहास है। गोलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले इस समस्त पुण्यप्रद इतिहासको सुनिये। शङ्खचूड़ उस समय सुदामा नामसे प्रसिद्ध गोप था। मेरे पार्षदोंमें उसकी प्रधानता थी। श्रीराधाके शापने उसे दानव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिये विवश कर दिया।

राधा अति करुणामयी हैं। सखियोंका तिरस्कार करनेके कारण राधाने शाप तो दे दिया, परंतु जब सुदामा मुझे प्रणाम करके रोता हुआ सभाभवनसे बाहर जाने लगा, तब दयामयी राधा कृपावश तुरंत संतुष्ट हो गयीं। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने सुदामाको रोक लिया। कहा—'वत्स! रुके रहो, मत जाओ, कहाँ जाओगे?' तब मैंने उन राधाको समझाया और कहा—'सभी धैर्य रखें, यह सुदामा आधे क्षणमें ही शापका पालन करके पुनः लौट आयेगा।' 'सुदामन्! तुम यहाँ अवश्य आ जाना'—यों कहकर मैंने किसी प्रकार राधाको शान्त किया। अखिल जगत्के रक्षक ब्रह्मन्! गोलोकके आधे क्षणमें ही भूमण्डलपर एक मन्वन्तरका समय हो जाता है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार यह सब कुछ पूर्वनिश्चित व्यवस्थाके अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण मायाओंका पूर्ण ज्ञाता अपार बलशाली योगीश यह शङ्खचूड़ समयपर पुनः उस गोलोकमें ही चला जायगा। आप लोग मेरा यह त्रिशूल लेकर शीघ्र भारतवर्षमें चलें। शंकर मेरे त्रिशूलसे उस दानवका संहार करें। दानव शङ्खचूड़ मेरे ही सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाले कवचोंको कण्ठमें सदा धारण किये रहता है; इसीलिये वह अखिल विश्वविजयी है। ब्रह्मन्! उसके कण्ठमें कवच रहते हुए कोई भी उसे मारनेमें सफल नहीं हो सकता। अतः मैं ही ब्राह्मणका वेष धारण करके कवचके लिये उससे याचना करूँगा। साथ ही जिस समय उसकी स्त्रीका सतीत्व नष्ट होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी—यह आपने उसको वर दे रखा है। एतदर्थ उसकी पत्नीके उदरमें मैं वीर्य स्थापित करूँगा—मैंने यह निश्चित कर लिया है। (वैसे 'तुलसी' मेरी नित्यप्रिया है, इससे वस्तुतः मुझ सर्वात्माको कोई दोष भी नहीं होगा।) उसी समय शङ्खचूड़की मृत्यु हो जायगी—इसमें कोई संदेह नहीं है। तदनन्तर उस दानवकी वह पत्नी अपने उस शरीरको त्यागकर पुनः मेरी प्रिय पत्नी बन जायगी।

नारद! इस प्रकार कहकर जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिने शंकरको त्रिशूल सौंप दिया। त्रिशूल लेकर रुद्र और ब्रह्मा सब देवताओंके साथ भारतवर्षको चल दिये। (अध्याय १६)

पुष्पदन्तका दूत बनकर शङ्खचूड़के पास जाना और शङ्खचूड़के द्वारा तुलसीके प्रति ज्ञानोपदेश

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर ब्रह्मा दानवके संहार-कार्यमें शंकरको नियुक्त करके स्वयं उसी क्षण अपने स्थानपर चले गये। देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। तब चन्द्रभागा नदीके तटपर एक मनोहर वट-वृक्षके नीचे जाकर देवताओंका अभ्युदय करनेके विचारसे महादेवजीने आसन जमा लिया। गन्धर्वराज पुष्पदन्त शंकरका बड़ा प्रेमी था। उन्होंने उसे दूत बनाकर तुरंत हर्षपूर्वक शङ्खचूड़के पास भेजा। उनकी आज्ञा पाकर पुष्पदन्त उसी क्षण शङ्खचूड़के नगरकी ओर चल दिया। दानवराजकी पुरी अमरावतीसे भी श्रेष्ठ थी। कुबेरका भवन उसके सामने तुच्छ था। उस नगरकी लम्बाई दस योजन थी और चौड़ाई पाँच योजन। स्फटिक-मणिके समान रत्नोंसे बने हुए परकोटोंद्वारा वह घिरा था। सात दुर्गम खाइयोंसे वह सुरक्षित था। प्रज्वलित अग्निके समान निरन्तर चमकनेवाले करोड़ों रत्नोंद्वारा उसका निर्माण किया गया था। उसमें सैकड़ों सुन्दर सड़कें और मणिमय विचित्र वेदियाँ थीं। व्यापारकुशल पुरुषोंके द्वारा बनवाये हुए भवन और ऊँचे-ऊँचे महल चारों ओर सुशोभित थे, जिनमें नाना प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुएँ भरी थीं। सिन्दूरके समान लाल मणियोंद्वारा बने हुए असंख्य, विचित्र, दिव्य एवं सुन्दर आश्रम उस नगरकी शोभा बढ़ाते थे।

मुने! इस प्रकारके सुन्दर नगरमें जाकर पुष्पदन्तने शङ्खचूड़का भवन देखा। वह नगरके बिलकुल मध्यभागमें था। नगरकी आकृति वलयके समान गोल थी। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो पूर्ण चन्द्रमण्डल हो। प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान चार परिखाएँ उसे सुरक्षित किये हुए थीं। शत्रुओंके लिये उस भवनमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन था, परंतु हितैषी व्यक्ति बड़ी सुगमतासे उसमें जा सकते थे। अत्यन्त उच्च, गगनस्पर्शी मणिमय प्राचीरोंसे वह भवन घिरा हुआ था। बारह द्वारोंसे भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। प्रत्येक द्वारपर द्वारपाल थे। सर्वोत्तम मणियोंद्वारा निर्मित लाखों मन्दिर, बहुत-से सोपान तथा रत्नमय खंभे थे। एक द्वारको देखनेके बाद पुष्पदन्तने दूसरे प्रधान द्वारको भी देखा। उस द्वारपर हाथमें त्रिशूल लिये एक पुरुष विराजमान था। उसके मुखपर हँसी छायी थी। उसकी पीली आँखें थीं। उसके शरीरका रंग ताँबेके सदृश लाल था। भय उत्पन्न करनेवाले उस द्वारपालसे आज्ञा पाकर पुष्पदन्त आगे बढ़ा और दूसरे द्वारको लाँघकर भीतर चला गया। यह दूत युद्धकी सूचना पहुँचानेवाला है—यह सुनकर कोई भी उसे रोकता नहीं था। इस तरह नौ द्वारोंको लाँघकर पुष्पदन्त सबसे भीतरके द्वारपर पहुँच गया। वहाँ द्वारपालसे अनुमति लेकर वह भीतर गया। वहाँ जाकर देखा, परम मनोहर शङ्खचूड़ राजाओंके मध्यमें सुवर्णके सिंहासनपर बैठा था। उसके मस्तकपर सोनेका सुन्दर छत्र तना था, जिसे एक भृत्यने ले रखा था। उस छत्रमें मणियाँ जड़ी गयी थीं। वह विचित्र छत्र रत्नमय दण्डसे सुशोभित था। रत्ननिर्मित कृत्रिम पुष्प उसकी शोभाको और भी प्रशस्त कर रहे थे। सफेद एवं चमकीले चँवर हाथमें लेकर अनेक पार्षद शङ्खचूड़की सेवामें संलग्न थे। उत्तम वेष एवं रत्नमय भूषणोंसे विभूषित होनेके कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। मुने! उसके गलेमें माला थी। शरीरपर चन्दनका अनुलेपन था। वह दो महीन उत्तम वस्त्र पहिने हुए था। वह दानव उस समय सुन्दर वेषवाले असंख्य प्रसिद्ध दानवोंसे घिरा था और

असंख्य दूसरे दानव हाथोंमें अस्त्र लिये इधर-उधर घूम रहे थे। ऐसे वैभव-सम्पन्न शङ्खचूड़को देखकर पुष्पदन्त आश्चर्यमें पड़ गया। तदनन्तर उसने शंकरके कथनानुसार युद्धविषयक संदेश सुनाना आरम्भ किया।

पुष्पदन्तने कहा—राजेन्द्र! प्रभो! मैं भगवान् शंकरका दूत हूँ। मेरा नाम पुष्पदन्त है। शंकरजीकी कही हुई बातें ही मैं यहाँ आपसे कह रहा हूँ, सुननेकी कृपा करें। अब आप देवताओंका राज्य तथा उनका अधिकार उन्हें लौटा दें; क्योंकि वे देवेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये थे। उन प्रभुने अपना त्रिशूल देकर आपके विनाशके लिये शंकरको भेजा है। त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव इस समय चन्द्रभागा नदीके तटपर वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। आप या तो देवताओंका राज्य लौटा दें या निश्चित रूपसे युद्ध करें। मुझे यह भी बता दें कि मैं भगवान् शंकरके पास जाकर उनको क्या उत्तर दूँ?

नारद! दूतके रूपमें गये हुए पुष्पदन्तकी बात सुनकर शङ्खचूड़ उठाकर हँस पड़ा और बोला—'दूत! मैं कल प्रातःकाल चलूँगा, तुम जाओ।' तब पुष्पदन्त तुरंत वटके नीचे विराजमान भगवान् शंकरके पास लौट गया और उनसे शङ्खचूड़की बात, जो स्वयं उसने अपने मुखसे कही थी, कह सुनायी। साथ ही, उसके पास जो सेना आदि युद्धोपकरण थे, उनका भी परिचय दिया। इतनेमें योजनानुसार कार्तिकेय शंकरके समीप आ पहुँचे। वीरभद्र, नन्दीश्वर, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, पिङ्गलाक्ष, बाणासुर, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिलाक्ष, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालंकट, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम, आठों भैरव, ग्यारहों रुद्र, आठों वसु, इन्द्र आदि देवता, बारहों सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यमराज, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मङ्गल, धर्म, शनि, ईशान और प्रतापी कामदेव आदि भी आ गये।

साथ ही, उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोटरा, कैटभी तथा स्वयं सौ भुजावाली भयंकर भगवती भद्रकाली देवी भी वहाँ आ गयीं। वे देवी अतिशय श्रेष्ठ रत्नद्वारा निर्मित विमानपर बैठी थीं। उनका विग्रह लाल रंगके वस्त्रसे सुशोभित था। उनके गलेमें लाल पुष्पोंकी माला थी। सभी अङ्ग लाल चन्दनसे अनुलिप्त थे। नाचना, हँसना, हर्षके उल्लासमें भरकर मीठे स्वरोंमें गाना, भक्तोंको अभय प्रदान करना तथा शत्रुओंको डराना उन अभयस्वरूपिणी भगवती भद्रकालीका सहज गुण बन गया था। उनके मुखमें बड़ी विकराल लंबी जीभ लपलपा रही थी। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, एक योजन विस्तृत वर्तुलाकार गम्भीर खप्पर, गगनचुम्बी त्रिशूल, एक योजनमें फैली हुई शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, पाश, खेटक, प्रकाशमान फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गन्धर्व, गरुड़, पार्जन्य एवं पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पार्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायव्यास्त्र, सम्मोहन दण्ड, शतशः अमोघ अस्त्र तथा सैकड़ों दिव्य अस्त्रको धारण करके भगवती भद्रकाली अनन्त योगिनियोंके साथ वहाँ आकर विराज गयीं। उनके साथमें अत्यन्त भयंकर असंख्य डाकिनियोंका यूथ भी सुशोभित था। भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष और किन्नर भी सहयोग देनेके लिये आ पहुँचे। इन सबको साथ लेकर स्वामी कार्तिकेयने अपने पिता चन्द्रशेखर शिवको प्रणाम किया और सहायता करनेके विचारसे उनकी आज्ञा लेकर पास बैठ गये।

इधर दूतके चले जानेपर प्रतापी शङ्खचूड़ अन्तःपुरमें गया और उसने अपनी पत्नी तुलसीसे युद्धसम्बन्धी बातें बतायीं। सुनते ही तुलसीके होठ और तालु सूख गये। उसका हृदय संतप्त

हो उठा। फिर परम साध्वी तुलसी मधुर वाणीमें कहने लगी।

तुलसीने कहा—प्राणबन्धो! नाथ! आप मेरे प्राणोंके अधिष्ठाता देव हैं। आप विराजिये। क्षणभर मेरे जीवनकी रक्षा कीजिये। मैं अपने नेत्रोंसे कुछ समयतक तो आदरपूर्वक आपके दर्शन कर लूँ। मेरे प्राण फड़फड़ा रहे हैं। आज मैंने रातके अन्तिम क्षणमें एक बुरा स्वप्न देखा है।

महाराज शङ्खचूड़ ज्ञानी पुरुष था। तुलसीकी बात सुनकर उसने भोजन किया। जल पिया। फिर अवसर पाकर उसने सत्य, हितकर एवं यथार्थ वचन तुलसीसे कहे।

शङ्खचूड़ बोला—प्रिये! कर्म-भोगका सारा निबन्ध कालके सूत्रमें बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और मङ्गल—सभी कालके अधीन हैं। समयानुसार वृक्ष उगते, उनपर शाखाएँ फैलतीं, पुष्प लगते और क्रमशः वे फलसे लद जाते हैं। फिर काल ही उन फलोंको पकाता भी है। बादमें कालके प्रभावसे फूल-फलकर वे सम्पूर्ण वृक्ष नष्ट भी हो जाते हैं। सुन्दरि! समयपर विश्व उत्पन्न होता है और समयानुसार उसकी अन्तिम घड़ी आ जाती है। कालकी महिमा स्वीकार करके ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और विष्णु पालनमें तत्पर रहते हैं। रुद्रका संहार-कार्य भी कालके संकेतपर ही निर्भर है। सभी क्रमशः कालानुसार अपने व्यापारमें नियुक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि प्रधान देवताओंके भी अधीश्वर हैं—परमात्मा श्रीकृष्ण। जो प्रकृतिसे परे हैं, उन्हींको स्रष्टा, पाता और संहर्ता कहते हैं। वे सदा अपने सम्पूर्ण अंशसे विराजमान रहते हैं। वे ही समयपर स्वेच्छापूर्वक प्रकृतिको उत्पन्न करके विश्वमें रहनेवाले सम्पूर्ण चराचर पदार्थोंको रचते हैं। उन्हें सर्वेश, सर्वरूप, सर्वात्मा और परमेश्वर कहते हैं। वे जनसे जनकी सृष्टि करते, जनसे जनकी रक्षा करते तथा जनसे जनका संहार करते हैं, उन्हीं त्रिगुणातीत परम प्रभु राधावल्लभकी तुम उपासना करो। उन्हींकी आज्ञासे सदा शीघ्रगामी पवन प्रवाहित होते हैं, सूर्य आकाशमें तपते हैं, इन्द्र समयानुसार वर्षा करते हैं, मृत्यु प्राणियोंमें विचरती है, अग्नि यथावसर दाह उत्पन्न करते हैं तथा शीतल चन्द्रमा भयभीतकी भाँति आकाशमण्डलमें चक्कर लगाते हैं। प्रिये! जो मृत्युकी मृत्यु, कालके काल, यमराजके श्रेष्ठ शासक, ब्रह्माके स्वामी, माता-की-माता, जगत्की जननी तथा संहार करनेवालेके भी संहारकर्ता हैं, उन परम प्रभु भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें तुम जाओ। प्रिये! यहाँ कौन किनका बन्धु है! जो सबके बन्धु हैं, उन्हींकी तुम उपासना करो। ब्रह्माने हम दोनोंको एक रस्सीमें बाँध दिया। इससे तुम्हारे साथ जगत्के व्यवहारमें मैं फँस गया। पुनः विलग हो जाना विधिकी इच्छापर ही निर्भर है। शोक एवं विपत्ति सामने आनेपर अज्ञानी व्यक्ति घबराता है न कि पण्डित पुरुष। कालचक्रके क्रमसे सुख और दुःख एकके बाद एक आते-जाते ही रहते हैं। अब तुम्हें निश्चय ही वे सर्वेश भगवान् नारायण साक्षात् पतिरूपमें प्राप्त होंगे, जिनके लिये बदरी-आश्रममें रहकर तुम तपस्या कर चुकी हो। तपस्या तथा ब्रह्माके वर-प्रदानसे तुम्हें पानेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था। कामिनि! उस समय तुम भगवान् श्रीहरिके लिये तप कर रही थी। अतः अब उन्हींको प्राप्त करोगी। गोलोकमें वृन्दावन है। वहीं तुम भगवान् गोविन्दको पाओगी। मैं भी इस दानवी शरीरका परित्याग करके उसी दिव्यलोकमें चलूँगा। वहीं तुम मुझे देख सकोगी और मैं तुम्हें। इस समय जो मैं परम दुर्लभ भारतवर्षमें आया हूँ, इसमें कारण केवल श्रीराधाजीका शाप है। प्रिये! सुनो! मेरा गोलोकमें पुनः जाना सर्वथा निश्चित है। अतः शोक करनेकी क्या आवश्यकता है? कान्ते! तुम

भी अब शीघ्र ही इस शरीरका परित्याग करके दिव्य रूप धारणकर श्रीहरिको पतिरूपसे प्राप्त कर लोगी। अतः तनिक भी घबरानेकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार शङ्खचूड़ तुलसीके साथ सुन्दर बातचीत कर रहा था, इतनेमें सायंकालका समय हो गया। रत्नमय भवनमें पुष्प और चन्दनसे चर्चित श्रेष्ठ शय्या बिछी थी। वह उसपर सो गया और भाँति-भाँतिके वैभवोंकी बात उसके मनमें स्फुरित होने लगी। उसके भवनमें रत्नका दीपक जल रहा था। परम सुन्दरी स्त्रियोंमें रत्न तुलसी सेवामें उपस्थित थी। ज्ञानी शङ्खचूड़ने पुनः तुलसीको दिव्य ज्ञान प्रदर्शित करते हुए समझाया। साथ ही शङ्खचूड़ने तुलसीको सम्पूर्ण शोकोंको दूर करनेवाले उस उत्तम ज्ञानको बतलाया जो दिव्य भाण्डीरवनमें भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उसे प्राप्त हुआ था। ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानको पाकर उस देवीका मुख प्रसन्नतासे भर गया। समस्त जगत् नश्वर है—यह मानकर वह हर्षपूर्वक हास-विलास करने लगी। फिर दोनों सुखपूर्वक सो गये। (अध्याय १७)

शङ्खचूड़का पुष्पभद्रा नदीके तटपर जाना, वहाँ भगवान् शंकरके दर्शन तथा उनसे विशद वार्तालाप

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! राजा शङ्खचूड़ श्रीकृष्णका भक्त था। वह मनमें भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करके ब्राह्ममुहूर्तमें ही अपनी पुष्पमयी शय्यासे उठ गया। उसने स्वच्छ जलसे स्नान करके रातके वस्त्र त्याग दिये। धुले हुए दो वस्त्रोंको पहनकर उज्ज्वल तिलक कर लिया; फिर इष्ट देवताके वन्दन आदि प्रतिदिनके आवश्यक कर्तव्योंको पूरा किया। दही, घृत, मधु और लाजा आदि माङ्गलिक वस्तुएँ देखीं। नारद! प्रतिदिनकी भाँति उसने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको उत्तम रत्न, मणि, स्वर्ण और वस्त्र दान किये। यात्रा मङ्गलमयी होनेके लिये उसने अमूल्य रत्न तथा कुछ मोती, मणि एवं हीरे भी अपने गुरुदेव ब्राह्मणकी सेवामें समर्पित किये। वह अपने कल्याणार्थ श्रेष्ठ हाथी, घोड़े और सर्वोत्तम सुन्दर धन दरिद्र ब्राह्मणोंको खुले हाथों बाँटने लगा। उस समय हजारों वस्तुपूर्ण भवन, लाखों नगर तथा असंख्य गाँव शङ्खचूड़ने दानरूपमें ब्राह्मणोंको दिये। इसके बाद उसने अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंका राजा बनाकर उसे अपनी प्रेयसी पत्नी, राज्य, सम्पूर्ण सम्पत्ति, प्रजा एवं सेवकवर्ग, कोष तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन सौंप दिये। उसने स्वयं कवच पहन लिया। हाथमें धनुष और बाण ले लिये। सब सैनिकोंको एकत्र किया। तीन लाख घोड़े और पाँच लाख उत्तम श्रेणीके हाथी उपस्थित हुए। दस हजार रथ तथा तीन-तीन करोड़ धनुर्धारी, ढाल-तलवारधारी और त्रिशूलधारी वीर उसकी सेनाके अङ्ग बने।

नारद! इस प्रकार दानवेश्वर शङ्खचूड़ने अपरिमित सेना सजा ली। युद्धशास्त्रके पारगामी एक महारथी वीरको सेनापतिके पदपर नियुक्त किया। महारथी उसे समझना चाहिये जो रथियोंमें श्रेष्ठ हो। राजा शङ्खचूड़ने उस महारथीको अगणित अक्षौहिणी सेनापर अधिकार प्रदान कर दिया। उस सेनाध्यक्षमें ऐसी योग्यता थी कि स्वयं तीस अक्षौहिणी सेनासे अपनी सेनाको बचा सकता था। तत्पश्चात् शङ्खचूड़ मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता हुआ बाहर निकला। उत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर सवार हुआ और गुरुवरोंको आगे करके भगवान् शंकरकी सेवामें चल दिया।

नारद! पुष्पभद्रा (या चन्द्रभागा) नदीके तटपर एक सुन्दर अक्षयवट है। वहीं सिद्धोंके बहुत-से आश्रम हैं। उस स्थानको सिद्धक्षेत्र कहा गया है। यह पवित्र स्थान भारतवर्षमें है। इसे कपिलमुनिकी तपोभूमि कहते हैं। यह पश्चिमी समुद्रसे पूर्व तथा मलयपर्वतसे पश्चिममें है, श्रीशैलपर्वतसे उत्तर तथा गन्धमादनसे दक्षिण भागमें है। इसकी चौड़ाई पाँच योजन है और लम्बाई पाँच सौ योजन। वहाँ भारतवर्षमें एक पुण्यप्रदा नदी बहती है। उसका जल स्वच्छ स्फटिकमणिके समान उद्भासित होता है। वह जलसे कभी खाली नहीं होती। उसे पुष्पभद्रा कहते हैं। वह नदी समुद्रकी पत्नीरूपसे विराजमान होकर सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। वह शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल जलसे पूर्ण है। उसका उद्गम-स्थान हिमालय है। कुछ दूर आगे आनेपर शरावती नामकी नदी उसमें मिल गयी है। वह गोमन्तपर्वतको बायें करके बहती हुई पश्चिम समुद्रकी ओर प्रस्थान करती है। वहाँ पहुँचकर शङ्खचूड़ने भगवान् शंकरको देखा।

उस समय भगवान् शंकर वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान उद्भासित हो रहा था। वे योगासनसे बैठे थे, उनके हाथोंमें वर और अभयकी मुद्रा थी। मुखमण्डल मुस्कानसे भरा था। वे ब्रह्मतेजसे उद्भासित हो रहे थे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल थी। उनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश थे तथा शरीरपर श्रेष्ठ बाघम्बर शोभा पा रहा था। वस्तुतः गौरीके प्रिय पति भगवान् शंकर परम सुन्दर हैं। उनका शान्त विग्रह भक्तके मृत्युभयको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ है। तपस्याका फल देना तथा अखिल सम्पत्तियोंको भरपूर रखना उनका स्वाभाविक गुण है। वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। उनके मुखपर कभी उदासी नहीं आती। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। उन्हें विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर और विश्वसंहारक कहा जाता है। वे कारणोंके कारण तथा नरकसे उद्धार करनेमें परम कुशल हैं। वे सनातन प्रभु ज्ञान प्रदान करनेवाले, ज्ञानके बीज तथा ज्ञानानन्द हैं। दानवराज शङ्खचूड़ने विमानसे उतरकर उनके

दर्शन किये और सबके साथ सिर झुकाकर उन भगवान् शंकरको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उस समय शंकरके वाम-भागमें भद्रकाली विराजित थीं और सामने स्वामिकार्तिकेय थे। इन तीनों महानुभावोंने शङ्खचूड़को आशीर्वाद दिया। उसे आया देखकर नन्दीश्वर प्रभृति सब-के-सब उठकर खड़े हो गये। तदनन्तर सबमें परस्पर सामयिक बातें आरम्भ हो गयीं। उनसे बातचीत करनेके पश्चात् राजा शङ्खचूड़ भगवान् शंकरके समीप बैठ गया। तब प्रसन्नात्मा भगवान् महादेव उससे कहने लगे।

महादेवजीने कहा—राजन्! ब्रह्मा अखिल जगत्के रचयिता हैं। वे धर्मज्ञ एवं धर्मके पिता हैं। उनके पुत्र मरीचि हैं। इनमें श्रीहरिके प्रति अपार श्रद्धा तथा धर्मके प्रति निष्ठा है। मरीचिने धर्मात्मा कश्यपको पुत्ररूपसे प्राप्त किया है। प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ

इन्हें सौंपी हैं। उन्हीं कन्याओंमें उस वंशकी वृद्धि करनेवाली परम साध्वी एक दनु है। दनुके चालीस पुत्र हैं, जिन्हें परम तेजस्वी दानव कहा जाता है। उन पुत्रोंमें बल एवं पराक्रमसे युक्त एक पुत्रका नाम विप्रचित्ति है। विप्रचित्तिके पुत्र दम्भ हैं। ये दम्भ धर्मात्मा, जितेन्द्रिय एवं वैष्णव पुरुष हैं। इन्होंने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर भगवान् श्रीकृष्णके उत्तम मन्त्रका पुष्करक्षेत्रमें लाख वर्षतक जप किया था; तब तुम कृष्णपरायण श्रेष्ठ पुरुष उन्हें पुत्ररूपसे प्राप्त हुए हो। पूर्वजन्ममें तुम भगवान् श्रीकृष्णके पार्षद एक महान् धर्मात्मा गोप थे। गोपोंमें तुम्हारी महती प्रतिष्ठा थी। इस समय तुम श्रीराधिकाके शापसे भारतवर्षमें आकर दानवेश्वर बने हो। वैष्णव पुरुष ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सारी वस्तुओंको भ्रममात्र मानते हैं। उन्हें केवल भगवान् श्रीहरिकी सेवा ही अभीष्ट है। उसे छोड़कर वे सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सामीप्य—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंतकको दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते। वैष्णवोंने ब्रह्मत्व या अमरत्वको भी तुच्छ माना है। इन्द्रत्व या कुबेरत्वको तो वे कुछ गिनते ही नहीं हैं। तुम वही परम वैष्णव श्रीकृष्ण-भक्त पुरुष हो; तुम्हारे लिये देवताओंका राज्य भ्रममात्र है। उसमें तुम्हारी क्या आस्था हो सकती है? राजन्! तुम देवताओंका राज्य उन्हें लौटा दो और मुझे आनन्दित करो। तुम अपने राज्यमें सुखसे रहो और देवता अपने स्थानपर रहें। भाई-भाईमें विरोधसे कोई लाभ नहीं है; तुम सब-के-सब एक ही पिता कश्यपजीके वंशज हो। ब्रह्महत्या आदिसे उत्पन्न हुए जितने पाप हैं, उनकी यदि जातिद्रोह-सम्बन्धी पापोंसे तुलना की जाय तो वे इनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते।

राजेन्द्र! यदि तुम अपनी सम्पत्तिकी हानि समझते हो तो भला, सोचो तो कौन ऐसे पुरुष हैं जिनकी सदा एक-सी स्थिति बनी रह सकी है? प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्मा भी अन्तर्धान हो जाते हैं। परमेश्वरकी इच्छासे फिर उनका प्राकट्य हो जाता है। फिर तपस्यासे निश्चय ही उनमें पूर्ववत् ज्ञान, बुद्धि तथा लोककी स्मृतिका उदय होता है। फिर वे स्रष्टा ज्ञानपूर्वक क्रमशः सृष्टि करते हैं। राजन्! सत्ययुगमें धर्म अपने परिपूर्णतम रूपसे प्रतिष्ठित रहता है। उस समय सदा सत्य ही उसका आधार होता है। वही धर्म त्रेतामें तीन भागसे, द्वापरमें दो भागसे तथा कलिमें एक भागसे युक्त कहा जाता है। इन तीन युगोंमें उसका क्रमशः ह्रास होता है। अमावास्याके चन्द्रमाकी भाँति कलिके अन्तमें धर्मकी एक कलामात्र शेष रह जाती है। ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यका जैसा तेज रहता है, वैसा फिर शिशिर-ऋतुमें नहीं रह सकता। दिनमें भी दोपहरके समय जैसा उनका तेज होता है, वैसा प्रातःकाल और सायंकालमें नहीं रहता। सूर्य समयसे उदित होते हैं, फिर क्रमशः बाल एवं प्रचण्ड-अवस्थामें आकर अन्तमें पुनः अस्त हो जाते हैं। कालक्रमसे जब दुर्दिन (वर्षाका समय) आता है, तब उन्हें दिनमें ही छिप जाना पड़ता है। राहुसे ग्रस्त होनेपर सूर्य काँपने लगते हैं; पुनः थोड़ी देरके बाद प्रसन्नता आ जाती है।

राजन्! पूर्णिमाकी रातमें चन्द्रमा जैसे अपनी सभी कलाओंसे पूर्ण रहते हैं, वैसे ही सदा नहीं रहते। प्रतिदिन क्षीण होते रहते हैं। फिर अमावास्याके बाद वे प्रतिदिन पुष्ट होने लगते हैं। शुक्लपक्षमें वे शोभा-सम्पत्तिसे युक्त रहते और कृष्णपक्षमें क्षय-रोगसे पुनः म्लान हो जाते हैं। ग्रहणके अवसरपर उनकी शोभा नष्ट हो जाती है तथा दुर्दिन आनेपर अर्थात् मेघाच्छन्न आकाशमें वे नहीं चमक पाते। काल-भेदके अनुसार चन्द्रमा किसी समय शुद्ध-श्रीसम्पन्न होते हैं तो किसी

समय श्रीहीन हो जाते हैं। बलि भविष्यमें इन्द्र होंगे। यद्यपि इस समय श्रीहीन होकर ये सुतल-लोकमें स्थित हैं। समयपर विश्व नष्ट होते हैं और कालके प्रभावसे पुनः उनकी उत्पत्ति भी होती है। अखिल चराचर प्राणी कालकी प्रेरणाके अनुसार नष्ट और उत्पन्न होते हैं। केवल परमात्मा श्रीकृष्ण ही सम हैं; क्योंकि वे ही सबके ईश्वर हैं। उन्हींकी कृपासे मुझे भी 'मृत्युञ्जय' होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतएव असंख्य प्राकृत प्रलयको मैंने देखा है और आगे भी मैं बार-बार देखूँगा। वे परमेश्वर ही प्रकृतिरूप हैं और उन्हींको पुरुष भी कहा जाता है। वे ही आत्मा और वे ही जीव हैं। वे नाना प्रकारके रूप धारण करके सदा कार्यमें संलग्न रहते हैं। जो सदा उनके नाम और गुणोंका कीर्तन करता है, वह काल, मृत्यु, जन्म, रोग तथा जराके भयको जीत लेता है। उन्हीं परमेश्वरने ब्रह्माको सृष्टिकर्ता, विष्णुको पालनकर्ता तथा मुझको संहारकर्ता बनाया है। उन्हींकी कृपासे हम सब लोग जगत्के शासक बने हैं। राजन्! इस समय मैं कालाग्निरुद्रको संहारके कार्यमें नियुक्त करके स्वयं उन परमेश्वरके नाम और गुणका निरन्तर कीर्तन करता हूँ। इसीसे मृत्यु मुझपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। इस ज्ञानकी महिमासे मैं सदा निर्भय रहता हूँ। मृत्यु भी मुझसे भय मानकर इस प्रकार भागती है, जैसे गरुड़के भयसे सर्प।

नारद! सर्वेश भगवान् शंकर सभाके मध्यभागमें उपर्युक्त बातें कहकर चुप हो गये। तब दानवराजने उनके वचन सुनकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, साथ ही मधुर वाणीमें विनयपूर्वक अपना भाषण आरम्भ किया।

शङ्खचूड़ने कहा—भगवन्! आपने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। उसे कभी अन्यथा नहीं माना जा सकता; तथापि कुछ मेरी भी प्रार्थना है, उसे यथार्थतः सुननेकी कृपा करें। इस समय आपने यहाँ जातिद्रोहको जो महान् पाप बताया है, वह यदि देवताओंको मान्य है तो राजा बलिका सर्वस्व छीनकर उन्हें सुतललोकमें क्यों भेज दिया गया? मैंने यह सारा ऐश्वर्य अपने पराक्रमसे प्राप्त किया है—दानवोंके पूर्ववैभवका उद्धार किया है। भगवान् गदाधर भी सुतललोकसे दानवसमाजको हटा देनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि वह उनका पैतृक स्थान है। यदि भाईके साथ द्रोह अनुचित है तो देवताओंने भाईसहित हिरण्याक्षकी हिंसा क्यों करवायी? शुम्भ आदि असुरोंको देवताओंने क्यों मार गिराया? पूर्वकालमें जब समुद्र मथा गया, उस समय अमृतका पान केवल देवताओंने किया; वे सम्पूर्ण फलके भागी हुए और हमें वहाँ केवल क्लेशका भागीदार बनाया गया। यह सारा विश्व परमात्मा श्रीकृष्णका क्रीड़ाक्षेत्र है। वे यहाँ जब जिसको देते हैं, उस समय उसीका ऐश्वर्यपर अधिकार होता है। देवताओं और दानवोंका ऐश्वर्यके निमित्त सदासे विवाद होता आया है। कालके अनुसार बारी-बारीसे कभी उनको और कभी हम लोगोंको जय अथवा पराजय प्राप्त होती रहती है। हम दोनोंके विरोधमें आपका आना निष्फल है; क्योंकि आप हम दोनोंके साथ समान सम्बन्ध रखनेवाले, बन्धु, ईश्वर एवं महात्मा हैं। हम लोगोंके साथ इस समय स्पर्धा रखना आपके लिये बड़ी लज्जाकी बात है और यदि कहीं युद्धमें आपकी पराजय हुई तो इससे भी अधिक आपकी अपकीर्ति फैलेगी।

मुने! शङ्खचूड़के ये वचन सुनकर भगवान् त्रिलोचन हँसने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने उस दानवेश्वरका समुचित उत्तर देना आरम्भ किया।

महादेवजी बोले—राजन्! तुम लोग भी तो ब्रह्माके ही वंशज हो। फिर तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें तो हमें क्या बड़ी लज्जा होगी और हारनेपर हमारी क्या भारी अपकीर्ति होगी? इसके पहले मधु और कैटभके साथ श्रीहरिका भी तो

युद्ध हो चुका है। राजन्! एक बार वे हिरण्याक्षसे लड़े थे और पुनः दूसरी बार हिरण्यकशिपुसे। स्वयं मैं भी इससे पूर्व त्रिपुर नामक दैत्योंके साथ युद्ध कर चुका हूँ। यही नहीं, किंतु प्राचीन समयमें जो सर्वेश्वरी एवं प्रकृति नामसे प्रसिद्ध भगवती जगदम्बा हैं, उनका शुम्भ आदि असुरोंके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध हुआ था। तुम तो स्वयं परमात्मा श्रीकृष्णके अंश और उनके पार्षद हो। जो-जो दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारे-जैसे बलवान् नहीं थे। फिर राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे क्या लज्जा है? देवता भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये हैं। तभी उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। अतः देवताओंका राज्य तुम लौटा दो। बस, मेरे कहनेका इतना ही अभिप्राय है। अथवा मेरे साथ प्रसन्नतासे लड़नेके लिये तैयार हो जाओ। अब अधिक शब्दोंके अपव्ययसे क्या प्रयोजन है?

नारद! जब इस प्रकार कहकर भगवान् शंकर चुप हो गये, तब शङ्खचूड़ भी अपने मन्त्रियोंके साथ तुरंत उठकर खड़ा हो गया। (अध्याय १८)

भगवान् शंकर और शङ्खचूड़के पक्षोंमें युद्ध, भद्रकालीका घोर युद्ध और आकाशवाणी सुनकर कालीका शङ्खचूड़पर पाशुपतास्त्र न चलाना

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! प्रतापी दानवराज शङ्खचूड़ सिर झुका भगवान् शिवको प्रणाम करके अपने मन्त्रियोंके साथ तत्काल विमानपर जा बैठा। दोनों दलोंमें युद्ध आरम्भ हो गया। दानव स्कन्दकी शक्तिसे निरन्तर पीड़ित होने लगे। उनमें हलचल मच गयी। इधर स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। उस भयंकर समराङ्गणमें ही स्कन्दके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। स्कन्दका युद्ध अत्यन्त अद्भुत और भयानक था। वह प्राकृतिक प्रलयकी भाँति दानवोंके लिये विनाशकारी सिद्ध हो रहा था। उसे देखकर विमानपर बैठे हुए राजा शङ्खचूड़ने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। राजाके बाण इस तरह गिर रहे थे, मानो मेघ जलकी धारा गिरा रहा हो। वहाँ घोर अन्धकार छा गया। फिर आग प्रकट होने लगी। यह देख नन्दीश्वर आदि सब देवता वहाँसे भाग चले। केवल कार्तिकेय ही युद्धके मुहानेपर डटे रहे। राजा शङ्खचूड़ पर्वतों, सर्पों, शिलाओं तथा वृक्षोंकी भयानक वृष्टि करने लगा। उसका वेग दुःसह था। राजाकी बाणवर्षासे शिवकुमार कार्तिकेय ढक गये, मानो सूर्यदेवपर स्निग्ध मेघमालाका आवरण पड़ गया हो। शङ्खचूड़ने स्कन्दके भयंकर एवं दुर्वह धनुषको काट दिया। दिव्य रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा रथके घोड़ोंको भी मार गिराया। उनके मोरको दिव्यास्त्रसे मार-मारकर छलनी कर दिया। इसके बाद दानवेन्द्रने उनके वक्षःस्थलपर सूर्यके समान जाज्वल्यमान प्राणघातक शक्ति चलायी। उस शक्तिके आघातसे एक क्षणतक मूर्च्छित होनेके पश्चात् कार्तिकेय फिर सचेत हो गये। उन्होंने वह दिव्य धनुष हाथमें लिया, जिसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने प्रदान किया था। फिर रत्नेन्द्रसारसे निर्मित यानपर आरूढ़ हो अस्त्र-शस्त्र लेकर कार्तिकेय भयंकर युद्ध करने लगे। शिवकुमार स्कन्दने अपने दिव्यास्त्रसे क्रोधपूर्वक दानवराजके चलाये हुए समस्त पर्वतों, शिलाखण्डों, सर्पों और वृक्षोंको काट गिराया। उन प्रतापी वीरने पार्जन्यास्त्रके द्वारा आग बुझा दी और खेल-खेलमें ही शङ्खचूड़के रथ, धनुष, कवच, सारथि और उज्ज्वल किरीट-मुकुटको काट डाला। फिर उल्काके समान प्रकाशित होनेवाली अपनी शक्ति दानवराजके वक्षःस्थलपर दे मारी। उसके आघातसे राजा मूर्च्छित हो गया। फिर तुरंत ही होशमें आकर वह दूसरे रथपर जा चढ़ा और दूसरा धनुष हाथमें ले

लिया। नारद! शङ्खचूड़ मायावियोंका शिरोमणि था। उसने मायासे उस युद्धभूमिमें बाणोंका जाल बिछा दिया और उसके द्वारा कार्तिकेयको ढककर सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित होनेवाली एक अमोघ शक्ति हाथमें ली। भगवान् विष्णुके तेजसे व्याप्त हुई वह शक्ति प्रलयाग्निकी शिखाके समान जान पड़ती थी। दानवराजने उसे क्रोधपूर्वक कार्तिकेयके ऊपर बड़े वेगसे दे मारा। वह शक्ति उनके शरीरपर प्रज्वलित अग्निकी राशिके समान गिरी। महाबली कार्तिकेय उस शक्तिसे आहत हो मूर्च्छित हो गये। तब काली उन्हें गोदमें उठाकर भगवान् शिवके पास ले गयी।

शिवने लीलापूर्वक ज्ञान-बलसे उन्हें जीवित कर दिया। साथ ही असीम बल प्रदान किया। प्रतापी वीर कार्तिकेय तत्काल उठकर खड़े हो गये। उसी क्षण भगवान् शंकरने अपनी सेना तथा देवताओंको युद्धके लिये प्रेरित किया। सेनासहित दानवराजोंके साथ देवताओंका युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ। स्वयं देवराज इन्द्र वृषपर्वाके साथ युद्ध करने लगे। सूर्यदेवने विप्रचित्तिके साथ युद्ध छेड़ दिया। चन्द्रमा दम्भके साथ भिड़ गये और बड़ा भारी युद्ध करने लगे। कालने कालेश्वरके साथ और अग्निदेवने गोकर्णके साथ जूझना आरम्भ किया। कालकेयसे कुबेर और मयासुरसे विश्वकर्मा लड़ने लगे। मृत्युदेवता भयंकर नामक दानवसे और यम संहारके साथ भिड़ गये। कलविङ्क और वरुणमें, चञ्चल और वायुमें, बुध और घृतपृष्ठमें तथा रक्ताक्ष और शनैश्चरमें युद्ध होने लगा। जयन्तने रत्नसारका सामना किया। वसुगण और वर्चोगण परस्पर जूझने लगे। दीप्तिमान्‌के साथ अश्विनीकुमार और धूम्रके साथ नलकूबरका युद्ध आरम्भ हुआ। धर्म और धनुर्धर, मङ्गल और मण्डूकाक्ष, शोभाकर और ईशान तथा पीठर और मन्मथ एक-दूसरेका सामना करने लगे। उल्कामुख, धूम्र, खड्गध्वज, काञ्चीमुख, पिण्ड, धूम्र, नन्दी, विश्व और पलाश—इन सबके साथ आदित्यगण घोर युद्ध करने लगे। ग्यारह महारुद्रगण ग्यारह भयंकर दानवोंके साथ भिड़ गये। उग्रदण्डा आदि और महामारीमें युद्ध होने लगा। नन्दीश्वर आदि समस्त रुद्रगण दानवगणोंके साथ लड़ने लगे। वह महान् युद्ध प्रलयकालके समान भयंकर जान पड़ता था। उस समय भगवान् शंकर काली और पुत्रके साथ वटवृक्षके नीचे ठहरे हुए थे। मुने! शेष समस्त सैन्यसमुदाय निरन्तर युद्धमें तत्पर थे। शङ्खचूड़ रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो करोड़ों दानवोंके साथ रमणीय रत्नमय सिंहासनपर विराजमान था। उस युद्धमें भगवान् शंकरके समस्त योद्धा पराजित हो गये। समस्त देवता क्षत-विक्षत हो भयके मारे भाग चले।

यह देख भगवान् स्कन्दको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने देवताओंको अभय दान दिया और अपने तेजसे आत्मीय गणोंका बल बढ़ाया। वे स्वयं भी दानवगणोंके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने समराङ्गणमें दानवोंकी सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार कर डाला। कमललोचना कालीने कुपित हो खप्पर गिराना आरम्भ किया। वे दानवोंके सौ-सौ खप्पर खून एक साथ पी जाती थीं। लाखों हाथी और घोड़ोंको एक ही हाथसे समेटकर लीलापूर्वक लील जाती थीं। मुने! समरभूमिमें सहस्रों कबन्ध (बिना सिरके धड़) नृत्य करने लगे। स्कन्दके बाण-समूहोंसे क्षत-विक्षत हुए महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न सभी दानव भयके मारे भाग चले। वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकङ्कन—ये सब बारी-बारीसे स्कन्दके साथ युद्ध करने लगे। अब कालीने समराङ्गणमें प्रवेश किया। भगवान् शिव कार्तिकेयकी रक्षा करने लगे। नन्दीश्वर आदि वीर कालीके ही पीछे-पीछे गये। समस्त देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, बहुत-से राज्यभाण्ड और करोड़ों मेघ भी उन्हींके साथ थे। संग्राममें पहुँचकर

कालीने सिंहनाद किया। देवीके उस सिंहनादसे दानव मूर्च्छित हो गये। कालीने बारंबार दैत्योंके लिये अमङ्गलसूचक अट्टहास किया। वे युद्धके मुहानेपर हर्षपूर्वक मधु पीने और नृत्य करने लगीं। उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा और कौट्टरी भी मधु-पान करने लगीं। योगिनियों और डाकिनियोंके गण तथा देवगण आदि भी इस कार्यमें योग देने लगे। कालीको उपस्थित देख शङ्खचूड़ तुरंत रणभूमिमें आ पहुँचा। दानव डरे हुए थे। दानवराजने उन सबको अभय दान दिया। कालीने प्रलयाग्निकी शिखाके समान अग्नि फेंकना आरम्भ किया, परंतु राजा शङ्खचूड़ने पार्जन्यास्त्रके द्वारा उसे अवहेलनापूर्वक बुझा दिया। तब कालीने तीव्र एवं परम अद्भुत वारुणास्त्र चलाया। परंतु दानवेन्द्रने गान्धर्वास्त्र चलाकर खेल-खेलमें ही उसे काट डाला। तदनन्तर कालीने अग्निशिखाके समान तेजस्वी माहेश्वरास्त्रका प्रयोग किया, किंतु राजा शङ्खचूड़ने वैष्णवास्त्रका प्रयोग करके उस अस्त्रको अवहेलनापूर्वक शीघ्र शान्त कर दिया। तब देवीने मन्त्रोच्चारणपूर्वक नारायणास्त्र चलाया। उसे देखते ही राजा रथसे उतर पड़ा और उस नारायणास्त्रको प्रणाम करने लगा। शङ्खचूड़ने दण्डकी भाँति भूमिपर पड़कर भक्तिभावसे नारायणास्त्रको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तब प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजस्वी वह अस्त्र ऊपरको चला गया। तदनन्तर कालीने मन्त्रके साथ यत्नपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया; किंतु महाराज शङ्खचूड़ने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसे शान्त कर दिया। फिर तो देवीने मन्त्रोच्चारणपूर्वक बड़े-बड़े दिव्यास्त्र चलाये। परंतु राजाने अपने दिव्यास्त्रोंसे उन सबको शान्त कर दिया। इसके बाद देवीने बड़े यत्नसे शक्तिका प्रहार किया, जो एक योजन लंबी थी। परंतु दानवराजने अपने तीखे अस्त्रोंके समूहसे उसके सौ टुकड़े कर डाले। तब देवीने मन्त्रोच्चारणपूर्वक पाशुपत-अस्त्रको हाथमें उठा लिया और उसे चलाना ही चाहती थीं कि उन्हें मना करती हुई यह स्पष्ट आकाशवाणी हुई—'यह राजा एक महान् पुरुष है, इसकी मृत्यु पाशुपत-अस्त्रसे कदापि नहीं होगी। जबतक यह अपने गलेमें भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका कवच धारण किये रहेगा और जबतक इसकी पतिव्रता पत्नी अपने सतीत्वकी रक्षा करती रहेगी, तबतक इसके समीप जरा और मृत्यु अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती—यह ब्रह्माका वर है।'

इस आकाशवाणीको सुनकर भगवती भद्रकालीने शस्त्र चलाना बंद कर दिया। अब वे क्षुधातुर होकर करोड़ों दानवोंको लीलापूर्वक निगलने लगीं। भयंकर वेषवाली वे देवी शङ्खचूड़को खा जानेके लिये बड़े वेगसे उसकी ओर झपटीं। तब दानवने अपने अत्यन्त तेजस्वी दिव्यास्त्रसे उन्हें रोक दिया। भद्रकाली अपनी सहयोगिनी योगिनियोंके साथ भाँति-भाँतिसे दैत्यदलका विनाश करने लगीं। उन्होंने दानवराज शङ्खचूड़को भी बड़ी चोट पहुँचायी, पर वे दानवराजका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकीं। तब वे भगवान् शंकरके पास चली गयीं और उन्होंने आरम्भसे लेकर अन्ततक क्रमशः युद्ध-सम्बन्धी सभी बातें भगवान् शंकरको बतलायीं। दानवोंका विनाश सुनकर भगवान् हँसने लगे।

भद्रकालीने यह भी कहा—'अब भी रणभूमिमें लगभग एक लाख प्रधान दानव बचे हुए हैं। मैं उन्हें खा रही थी, उस समय जो मुखसे निकल गये, वे ही बच रहे हैं। फिर जब मैं संग्राममें दानवराज शङ्खचूड़पर पाशुपतास्त्र छोड़नेको तैयार हुई और जब आकाशवाणी हुई कि यह राजा तुमसे अवध्य है, तबसे महान् ज्ञानी एवं असीम बल-पराक्रमसे सम्पन्न उस दानवराजने मुझपर अस्त्र छोड़ना बंद कर दिया। वह मेरे छोड़े हुए बाणोंको काट भर देता था। (अध्याय १९)

भगवान् शंकर और शङ्खचूड़का युद्ध, शंकरके त्रिशूलसे शङ्खचूड़का भस्म होना तथा सुदामा गोपके स्वरूपमें उसका विमानद्वारा गोलोक पधारना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भगवान् शिव तत्त्व जाननेमें परम प्रवीण हैं। भद्रकालीद्वारा युद्धकी सारी बातें सुनकर वे स्वयं अपने गणोंके साथ संग्राममें पहुँच गये। उन्हें देखकर शङ्खचूड़ विमानसे उतर गया और उसने परम भक्तिके साथ पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। यों भक्तिविनम्र होकर प्रणाम करनेके पश्चात् वह तुरंत रथपर सवार हो गया और भगवान् शिवके साथ युद्ध करने लगा। ब्रह्मन्! उस समय शिव और शङ्खचूड़में बहुत लंबे कालतक युद्ध होता रहा। कोई किसीसे न जीतते थे और न हारते थे। कभी समयानुसार शङ्खचूड़ शस्त्र रखकर रथपर ही विश्राम कर लेता और कभी भगवान् शंकर भी शस्त्र रखकर वृषभपर ही आराम कर लेते। शंकरके बाणोंसे असंख्य दानवोंका संहार हुआ। इधर संग्राममें देवपक्षके जो-जो योद्धा मरते थे, उनको विभु शंकर पुनः जीवित कर देते थे। उसी समय भगवान् श्रीहरि एक अत्यन्त आतुर बूढ़े ब्राह्मणका वेष बनाकर युद्धभूमिमें आये और दानवराज शङ्खचूड़से कहने लगे।

वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें पधारे हुए श्रीहरिने कहा—राजेन्द्र! तुम मुझ ब्राह्मणको भिक्षा देनेकी कृपा करो। इस समय सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदान करनेकी तुममें पूर्ण योग्यता है। अतः तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करो। मैं निरीह, तृषित एवं वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पहले तुम देनेके लिये सत्य प्रतिज्ञा कर लो, तब मैं तुमसे कहूँगा।

राजेन्द्र शङ्खचूड़ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'हाँ, हाँ, बहुत ठीक—आप जो चाहें सो ले सकते हैं।' तब अतिशय माया फैलाते हुए उन वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'मैं तुम्हारा 'कृष्णकवच' चाहता हूँ।' उनकी बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ शङ्खचूड़ने तुरंत वह दिव्य कवच उन्हें दे दिया और उन्होंने उसे ले भी लिया। फिर वे ही श्रीहरि शङ्खचूड़का रूप बनाकर तुलसीके निकट गये। वहाँ जाकर कपटपूर्वक उन्होंने उससे हास-विलास किया। (इस प्रकार शङ्खचूड़की पत्नीके रूपमें उसका सतीत्व भङ्ग हो गया। यद्यपि तत्त्वरूपसे तो वह श्रीहरिकी परम प्रेयसी पत्नी ही थी।) ठीक इसी समय शंकरने शङ्खचूड़पर चलानेके लिये श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल हाथमें उठा लिया। वह त्रिशूल इतना प्रकाशमान था, मानो ग्रीष्म-ऋतुका मध्याह्नकालीन सूर्य हो, अथवा प्रलयकालीन प्रचण्ड अग्नि। वह दुर्निवार्य, दुर्धर्ष, अव्यर्थ और शत्रुसंहारक था। सम्पूर्ण शस्त्रोंके सारभूत उस त्रिशूलकी तेजमें चक्रके साथ तुलना की जाती थी। उस भयंकर त्रिशूलको शिव अथवा केशव—ये दो ही उठा सकते थे। अन्य किसीके मानका वह नहीं था। वह साक्षात् सजीव ब्रह्म ही था। उसके रूपका कभी परिवर्तन नहीं होता और सभी उसे देख भी नहीं पाते थे। नारद! अखिल ब्रह्माण्डका संहार करनेकी उस त्रिशूलमें पूर्ण शक्ति थी। भगवान् शंकरने लीलासे ही उसे उठाकर हाथपर जमाया और शङ्खचूड़पर फेंक दिया। तब उस बुद्धिमान् नरेशने सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरतीपर फेंक दिया और वह बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ अनन्य-चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करने लगा। त्रिशूल कुछ समयतक तो चक्कर काटता रहा। तदनन्तर वह शङ्खचूड़के ऊपर जा गिरा। उसके गिरते ही तुरंत वह दानवेश्वर तथा उसका रथ—सभी जलकर भस्म हो गये।

दानव-शरीरके भस्म होते ही उसने एक दिव्य गोपका वेष धारण कर लिया। उसकी किशोर अवस्था थी। वह दो दिव्य भुजाओंसे सुशोभित था। उसके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी और रत्नमय आभूषण उसके शरीरको विभूषित कर रहे थे। इतनेमें अकस्मात् सर्वोत्तम दिव्य मणियोंद्वारा निर्मित एक दिव्य विमान गोलोकसे उतर आया। उसमें चारों ओर असंख्य गोपियाँ बैठी थीं। शङ्खचूड़ उसीपर सवार होकर गोलोकके लिये प्रस्थित हो गया।

मुने! उस समय वृन्दावनमें रासमण्डलके मध्य भगवान् श्रीकृष्ण और भगवती श्रीराधिका विराजमान थीं। वहाँ पहुँचते ही शङ्खचूड़ने भक्तिके साथ मस्तक झुकाकर उनके चरणकमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपने चिरसेवक सुदामाको देखकर उन दोनोंके श्रीमुख प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे अपनी गोदमें उठा लिया। तदनन्तर वह त्रिशूल बड़े वेगसे आदरपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया। शङ्खचूड़की हड्डियोंसे शङ्खकी उत्पत्ति हुई। वही शङ्ख अनेक प्रकारके रूपोंमें विराजमान होकर देवताओंकी पूजामें निरन्तर पवित्र माना जाता है। उसके जलको श्रेष्ठ मानते हैं; क्योंकि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये वह अचूक साधन है। उस पवित्र जलको तीर्थमय माना जाता है। उसके प्रति केवल शंकरकी आदरबुद्धि नहीं है। जहाँ-कहीं भी शङ्खध्वनि होती है, वहाँ लक्ष्मीजी सम्यक् प्रकारसे विराजमान रहती हैं। जो शङ्खके जलसे स्नान कर लेता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त हो जाता है। शङ्ख साक्षात् भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठान है। जहाँपर शङ्ख रहता है, वहाँ भगवान् श्रीहरि भगवती लक्ष्मीसहित सदा निवास करते हैं। अमङ्गल दूरसे ही भाग जाता है।

उधर शिव भी शङ्खचूड़को मारकर अपने लोकको पधार गये। उनके मनमें अपार हर्ष था। वे वृषभपर आरूढ़ होकर अपने गणोंसहित चले गये। अपना राज्य पा जानेके कारण देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। स्वर्गमें देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं और गन्धर्व तथा किन्नर यशोगान करने लगे। भगवान् शंकरके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी। देवताओं और मुनिगणोंने भगवान् शंकरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। (अध्याय २०)

शङ्खचूड़-वेषधारी श्रीहरिद्वारा तुलसीका पातिव्रत्यभङ्ग, शङ्खचूड़का पुनः गोलोक जाना, तुलसी और श्रीहरिका वृक्ष एवं शालग्राम-पाषाणके रूपमें भारतवर्षमें रहना तथा तुलसीमहिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण तथा महत्त्वका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो! भगवान् नारायणने कौन-सा रूप धारण करके तुलसीसे हास-विलास किया था? यह प्रसङ्ग मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण ऋषि कहते हैं—नारद! भगवान् श्रीहरिने वैष्णवी माया फैलाकर शङ्खचूड़से कवच ले लिया। फिर शङ्खचूड़का ही रूप धारण करके वे साध्वी तुलसीके घर पहुँचे, वहाँ उन्होंने तुलसीके महलके दरवाजेपर दुन्दुभि बजायी और जय-जयकारके घोषसे उस सुन्दरीको अपने आगमनकी सूचना दी।

तुलसीने पतिको युद्धसे आया देख उत्सव मनाया और महान् हर्षभरे हृदयसे स्वागत किया। फिर दोनोंमें युद्धसम्बन्धी चर्चा हुई; तदनन्तर शङ्खचूड़के वेषमें जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरि सो गये। नारद! उस समय तुलसीके साथ उन्होंने सुचारुरूपसे

हास-विलास किया तथापि तुलसीको इस बार पहलेकी अपेक्षा आकर्षण आदिमें व्यतिक्रमका अनुभव हुआ; अतः उसने सारी वास्तविकताका अनुमान लगा लिया और पूछा।

तुलसीने कहा—मायेश! बताओ तो तुम कौन हो? तुमने कपटपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया; इसलिये अब मैं तुम्हें शाप दे रही हूँ।

ब्रह्मन्! तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे भगवान् श्रीहरिने लीलापूर्वक अपना सुन्दर मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया। देवी तुलसीने

अपने सामने उन सनातन प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको विराजमान देखा। भगवान्‌का दिव्य विग्रह नूतन मेघके समान श्याम था। आँखें शरत्कालीन कमलकी तुलना कर रही थीं। उनके अलौकिक रूप-सौन्दर्यमें करोड़ों कामदेवोंकी लावण्य-लीला प्रकाशित हो रही थी। रत्नमय भूषण उन्हें आभूषित किये हुए थे। उनका प्रसन्नवदन मुस्कानसे भरा था। उनके दिव्य शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था। उन्हें देखकर पतिके निधनका अनुमान करके कामिनी तुलसी मूर्च्छित हो गयी। फिर चेतना प्राप्त होनेपर उसने कहा।

तुलसी बोली—नाथ! आपका हृदय पाषाणके सदृश है; इसीलिये आपमें तनिक भी दया नहीं है। आज आपने छलपूर्वक (मेरे इस शरीरका) धर्म नष्ट करके मेरे (इस शरीरके) स्वामीको मार डाला। प्रभो! आप अवश्य ही पाषाण-हृदय हैं, तभी तो इतने निर्दय बन गये! अतः देव! मेरे शापसे अब पाषाणरूप होकर आप पृथ्वीपर रहें। अहो! बिना अपराध ही अपने भक्तको आपने क्यों मरवा दिया?

इस प्रकार कहकर शोकसे संतप्त हुई तुलसी आँखोंसे आँसू गिराती हुई बार-बार विलाप करने लगी। तदनन्तर करुण-रसके समुद्र कमलापति भगवान् श्रीहरि करुणायुक्त तुलसीदेवीको देखकर नीतिपूर्वक वचनोंसे उसे समझाने लगे।

भगवान् श्रीहरि बोले—भद्रे! तुम मेरे लिये भारतवर्षमें रहकर बहुत दिनोंतक तपस्या कर चुकी हो। उस समय तुम्हारे लिये शङ्खचूड़ भी तपस्या कर रहा था। (वह मेरा ही अंश था।) अपनी तपस्याके फलसे तुम्हें स्त्रीरूपमें प्राप्त करके वह गोलोकमें चला गया। अब मैं तुम्हारी तपस्याका फल देना उचित समझता हूँ।

तुम इस शरीरका त्याग करके दिव्य देह धारणकर मेरे साथ आनन्द करो। लक्ष्मीके समान तुम्हें सदा मेरे साथ रहना चाहिये। तुम्हारा यह शरीर नदीरूपमें परिणत हो 'गण्डकी' नामसे प्रसिद्ध होगा। यह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षमें मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली बनेगी। तुम्हारे केशकलाप पवित्र वृक्ष होंगे। तुम्हारे केशसे उत्पन्न होनेके कारण तुलसीके नामसे ही उनकी प्रसिद्धि होगी। वरानने! तीनों लोकोंमें देवताओंकी पूजाके काममें आनेवाले जितने भी पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें तुलसी प्रधान मानी जायगी। स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल तथा वैकुण्ठ-लोकमें—सर्वत्र तुम मेरे संनिकट रहोगी। सुन्दरि! तुलसीके वृक्ष सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ हों। गोलोक, विरजा नदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भूलोक, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चन्दनवन एवं माधवी, केतकी,

कुन्द और मल्लिकाके वनमें तथा सभी पुण्य स्थानोंमें तुम्हारे पुण्यप्रद वृक्ष उत्पन्न हों और रहें। तुलसी-वृक्षके नीचेके स्थान परम पवित्र एवं पुण्यदायक होंगे; अतएव वहाँ सम्पूर्ण तीर्थों और समस्त देवताओंका भी अधिष्ठान होगा। वरानने! ऊपर तुलसीके पत्ते पड़ें, इसी उद्देश्यसे वे सब लोग वहाँ रहेंगे। तुलसीपत्रके जलसे जिसका अभिषेक हो गया, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने तथा समस्त यज्ञोंमें दीक्षित होनेका फल मिल गया। साध्वी! हजारों घड़े अमृतसे नहलानेपर भी भगवान् श्रीहरिको उतनी तृप्ति नहीं होती है, जितनी वे मनुष्योंके तुलसीका एक पत्ता चढ़ानेसे प्राप्त करते हैं। पतिव्रते! दस हजार गोदानसे मानव जो फल प्राप्त करता है, वही फल तुलसी-पत्रके दानसे पा लेता है। जो मृत्युके समय मुखमें तुलसी-पत्रका जल पा जाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। जो मनुष्य नित्यप्रति भक्तिपूर्वक तुलसीका जल ग्रहण करता है, वही जीवन्मुक्त है और उसे गङ्गा-स्नानका फल मिलता है। जो मानव प्रतिदिन तुलसीका पत्ता चढ़ाकर मेरी पूजा करता है, वह लाख अश्वमेध-यज्ञोंका फल पा लेता है। जो मानव तुलसीको अपने हाथमें लेकर और शरीरपर रखकर तीर्थोंमें प्राण त्यागता है, वह विष्णुलोकमें चला जाता है। तुलसी-काष्ठकी मालाको गलेमें धारण करनेवाला पुरुष पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है, इसमें संदेह नहीं।

जो मनुष्य तुलसीको अपने हाथपर रखकर प्रतिज्ञा करता है, और फिर उस प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, उसे सूर्य और चन्द्रमाकी अवधिपर्यन्त 'कालसूत्र' नामक नरकमें यातना भोगनी पड़ती है। जो मनुष्य तुलसीको हाथमें लेकर या उसके निकट झूठी प्रतिज्ञा करता है, वह 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें जाता है और वहाँ दीर्घकालतक वास करता है। मृत्युके समय जिसके मुखमें तुलसीके जलका एक कण भी चला जाता है वह अवश्य ही विष्णुलोकको जाता है। पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी और सूर्य-संक्रान्तिके दिन, मध्याह्नकाल, रात्रि, दोनों संध्याओं और अशौचके समय, तेल लगाकर, बिना नहाये-धोये अथवा रातके कपड़े पहने हुए जो मनुष्य तुलसीके पत्रोंको तोड़ते हैं, वे मानो भगवान् श्रीहरिका मस्तक छेदन करते हैं। साध्वि! श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चनके लिये तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक पवित्र ही रहता है। पृथ्वीपर अथवा जलमें गिरा हुआ तथा श्रीविष्णुको अर्पित तुलसी-पत्र धो देनेपर दूसरे कार्यके लिये शुद्ध माना जाता है।*

---

*तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति। तुलसीकेशसम्भूतास्तुलसीति च विश्रुताः॥
त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम संनिधौ। भवन्तु तुलसीवृक्षा वराः पुष्पेषु सुन्दरि॥
गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने भुवि। भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥
माधवीकेतकीकुन्दमल्लिकामालतीवने। भवन्तु तरवस्तत्र पुण्यस्थानेषु पुण्यदाः॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे। अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति॥
तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेद्धरेः। या च तुष्टिर्भवेन्नृणां तुलसीपत्रदानतः॥
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं लभते सति॥
तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

तुम निरामय गोलोक-धाममें तुलसीकी अधिष्ठात्री देवी बनकर मेरे स्वरूपभूत श्रीकृष्णके साथ निरन्तर क्रीड़ा करोगी। तुम्हारी देहसे उत्पन्न नदीकी जो अधिष्ठात्री देवी है, वह भारतवर्षमें परम पुण्यदा नदी बनकर मेरे अंशभूत क्षार-समुद्रकी पत्नी होगी। स्वयं तुम महासाध्वी तुलसीरूपसे वैकुण्ठमें मेरे संनिकट निवास करोगी। वहाँ तुम लक्ष्मीके समान सम्मानित होओगी। गोलोकके रासमें भी तुम्हारी उपस्थिति होगी, इसमें संशय नहीं है।

मैं तुम्हारे शापको सत्य करनेके लिये भारतवर्षमें 'पाषाण' (शालग्राम) बनकर रहूँगा। गण्डकी नदीके तटपर मेरा वास होगा। वहाँ रहनेवाले करोड़ों कीड़े अपने तीखे दाँतरूपी आयुधोंसे काट-काटकर उस पाषाणमें मेरे चक्रका चिह्न करेंगे। जिसमें एक द्वारका चिह्न होगा, चार चक्र होंगे और जो वनमालासे विभूषित होगा, वह नवीन मेघके समान श्यामवर्णका पाषाण 'लक्ष्मी-नारायण' का बोधक होगा। जिसमें एक द्वार और चार चक्रके चिह्न होंगे तथा वनमालाकी रेखा नहीं प्रतीत होती होगी, ऐसे नवीन मेघकी तुलना करनेवाले श्यामरंगके पाषाणको 'लक्ष्मीजनार्दन' की संज्ञा दी जानी चाहिये। दो द्वार, चार चक्र और गायके खुरके चिह्नसे सुशोभित एवं वनमालाके चिह्नसे रहित श्याम पाषाणको भगवान् 'राघवेन्द्र' का विग्रह मानना चाहिये। जिसमें बहुत छोटे दो चक्रके चिह्न हों, उस नवीन मेघके समान कृष्णवर्णके पाषाणको भगवान् 'दधिवामन' मानना चाहिये, वह गृहस्थोंके लिये सुखदायक है। अत्यन्त छोटे आकारमें दो चक्र एवं वनमालासे सुशोभित पाषाण स्वयं भगवान् 'श्रीधर' का रूप है—ऐसा समझना चाहिये। ऐसी मूर्ति भी गृहस्थोंको सदा श्रीसम्पन्न बनाती है। जो पूरा स्थूल हो, जिसकी आकृति गोल हो, जिसके ऊपर वनमालाका चिह्न अङ्कित न हो तथा जिसमें दो अत्यन्त स्पष्ट चक्रके चिह्न दिखायी पड़ते हों, उस शालग्राम शिलाकी 'दामोदर' संज्ञा है। जो मध्यम श्रेणीका वर्तुलाकार हो, जिसमें दो चक्र तथा तरकस और बाणके चिह्न शोभा पाते हों, एवं जिसके ऊपर बाणसे कट जानेका चिह्न हो, उस पाषाणको रणमें शोभा पानेवाले भगवान् 'रणराम' की संज्ञा देनी चाहिये। जो मध्यम श्रेणीका पाषाण सात चक्रोंसे तथा छत्र एवं तरकससे अलंकृत हो, उसे भगवान् 'राजराजेश्वर'की प्रतिमा समझे। उसकी उपासनासे मनुष्योंको राजाकी सम्पत्ति सुलभ हो सकती है। चौदह चक्रोंसे सुशोभित तथा नवीन मेघके समान रंगवाले स्थूल पाषाणको भगवान् 'अनन्त' का विग्रह मानना चाहिये। उसके पूजनसे धर्म, अर्थ,

---

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्या च मानवः। स एव जीवन्मुक्तश्च गङ्गास्नानफलं लभेत्॥
नित्यं यस्तुलसीं दत्त्वा पूजयेन्मां च मानवः। लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥
तुलसीं स्वकरे कृत्वा देहे धृत्वा च मानवः। प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति॥
तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥
तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति। स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
करोति मिथ्या शपथं तुलस्या यो हि मानवः। स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्। रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं स प्रयाति च॥
पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गे चास्नाते च मध्याह्ने निशि संध्ययोः॥
अशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासोऽन्विता नराः। तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः॥
त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥

(प्रकृतिखण्ड २१। ३२—५३)

काम और मोक्ष—ये चारों फल प्राप्त होते हैं। जिसकी आकृति चक्रके समान हो तथा जो दो चक्र, श्री और गो-खुरके चिह्नसे शोभा पाता हो, ऐसे नवीन मेघके समान वर्णवाले मध्यम श्रेणीके पाषाणको भगवान् 'मधुसूदन' समझना चाहिये। केवल एक चक्रवाला 'सुदर्शन'का, गुप्तचक्र-चिह्नवाला 'गदाधर'का तथा दो चक्र एवं अश्वके मुखकी आकृतिसे युक्त पाषाण भगवान् 'हयग्रीव' का विग्रह कहा जाता है। साध्वि! जिसका मुख अत्यन्त विस्तृत हो, जिसपर दो चक्र चिह्नित हों तथा जो बड़ा विकट प्रतीत होता हो ऐसे पाषाणको भगवान् 'नरसिंह' की प्रतिमा समझनी चाहिये। वह मनुष्यको तत्काल वैराग्य प्रदान करनेवाला है। जिसमें दो चक्र हों, विशाल मुख हो तथा जो वनमालाके चिह्नसे सम्पन्न हो, गृहस्थोंके लिये सदा सुखदायी हो, उस पाषाणको भगवान् 'लक्ष्मीनारायण' का विग्रह समझना चाहिये। जो द्वार-देशमें दो चक्रोंसे युक्त हो तथा जिसपर श्रीका चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़े, ऐसे पाषाणको भगवान् 'वासुदेव' का विग्रह मानना चाहिये। इस विग्रहकी अर्चनासे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो सकेंगी। सूक्ष्म चक्रके चिह्नसे युक्त, नवीन मेघके समान श्याम तथा मुखपर बहुत-से छोटे-छोटे छिद्रोंसे सुशोभित पाषाण 'प्रद्युम्न' का स्वरूप होगा। उसके प्रभावसे गृहस्थ सुखी हो जायँगे। जिसमें दो चक्र सटे हुए हों और जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, गृहस्थोंको निरन्तर सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'संकर्षण' की प्रतिमा समझनी चाहिये। जो अत्यन्त सुन्दर गोलाकार हो तथा पीले रंगसे सुशोभित हो, विद्वान् पुरुष कहते हैं कि गृहाश्रमियोंको सुख देनेवाला वह पाषाण भगवान् 'अनिरुद्ध'का स्वरूप है।

जहाँ शालग्रामकी शिला रहती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजते हैं और वहीं सम्पूर्ण तीर्थोंको साथ लेकर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं। ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, वे सब शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे नष्ट हो जाते हैं। छत्राकार शालग्राममें राज्य देनेकी तथा वर्तुलाकारमें प्रचुर सम्पत्ति देनेकी योग्यता है। शकटके आकारवाले शालग्रामसे दुःख तथा शूलके नोकके समान आकारवालेसे मृत्यु होनी निश्चित है। विकृत मुखवाले दरिद्रता, पिङ्गलवर्णवाले हानि, भग्नचक्रवाले व्याधि तथा फटे हुए शालग्राम निश्चितरूपसे मरणप्रद हैं। व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा श्राद्ध आदि सत्कार्य शालग्रामकी संनिधिमें करनेसे सर्वोत्तम हो सकते हैं। जो अपने ऊपर शालग्राम-शिलाका जल छिड़कता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर चुका तथा समस्त यज्ञोंका फल पा गया। अखिल यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओंके फलका वह अधिकारी समझा जाता है। साध्वि! चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य शालग्राम-शिलाकी उपासनासे प्राप्त हो जाता है। जो निरन्तर शालग्राम-शिलाके जलसे अभिषेक करता है, वह सम्पूर्ण दानके पुण्य तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाके उत्तम फलका मानो अधिकारी हो जाता है। शालग्राम-शिलाके जलका निरन्तर पान करनेवाला पुरुष देवाभिलषित प्रसाद पाता है; इसमें संशय नहीं। उसे जन्म, मृत्यु और जरासे छुटकारा मिल जाता है। सम्पूर्ण तीर्थ उस पुण्यात्मा पुरुषका स्पर्श करना चाहते हैं। जीवन्मुक्त एवं महान् पवित्र वह व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके पदका अधिकारी हो जाता है। भगवान्के धाममें वह उनके साथ असंख्य प्राकृत प्रलयतक रहनेकी सुविधा प्राप्त करता है। वहाँ जाते ही भगवान् उसे अपना दास बना लेते हैं। उस पुरुषको देखकर, ब्रह्महत्याके समान जितने बड़े-बड़े पाप हैं, वे इस प्रकार भागने लगते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प। उस पुरुषके चरणोंकी रजसे पृथ्वीदेवी तुरंत पवित्र हो जाती हैं। उसके जन्म लेते ही लाखों पितरोंका उद्धार हो जाता है।

मृत्युकालमें जो शालग्रामके जलका पान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है। उसे निर्वाणमुक्ति सुलभ हो जाती है। वह कर्मभोगसे छूटकर भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लीन हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं। शालग्रामको हाथमें लेकर मिथ्या बोलनेवाला व्यक्ति 'कुम्भीपाक' नरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त उसे वहाँ रहना पड़ता है। जो शालग्रामको धारण करके की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, उसे लाख मन्वन्तरतक 'असिपत्र' नामक नरकमें रहना पड़ता है। कान्ते! जो व्यक्ति शालग्रामपरसे तुलसीके पत्रको दूर करेगा, उसे दूसरे जन्ममें स्त्री साथ न दे सकेगी। शङ्खसे तुलसीपत्रका विच्छेद करनेवाला व्यक्ति भार्याहीन तथा सात जन्मोंतक रोगी होगा। शालग्राम, तुलसी और शङ्ख—इन तीनोंको जो महान् ज्ञानी पुरुष एकत्र सुरक्षितरूपसे रखता है, उससे भगवान् श्रीहरि बहुत प्रेम करते हैं।

नारद! इस प्रकार देवी तुलसीसे कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये। उधर देवी तुलसी अपना शरीर त्यागकर दिव्य रूपसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति शोभा पाने लगी। कमलापति भगवान् श्रीहरि उसे साथ लेकर वैकुण्ठ पधार गये। नारद! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी—ये चार देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं। उसी समय तुलसीकी देहसे गण्डकी नदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि भी उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम-शिला बन गये। मुने! वहाँ रहनेवाले कीड़े शिलाको काट-काटकर अनेक प्रकारकी बना देते हैं। वे पाषाण जलमें गिरकर निश्चय ही उत्तम फल प्रदान करते हैं। जो पाषाण धरतीपर पड़ जाते हैं, उनपर सूर्यका ताप पड़नेसे पीलापन आ जाता है, ऐसी शिलाको पिङ्गला समझनी चाहिये। (वह शिला पूजामें उत्तम नहीं मानी जाती।)

नारद! इस प्रकार यह सभी प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया; अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय २१)

तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसी-स्तवनका वर्णन

नारदजीने पूछा—प्रभो! तुलसी भगवान् नारायणकी प्रिया हैं, इसलिये परम पवित्र हैं। अतएव वे सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीया हैं; परंतु इनकी पूजाका क्या विधान है और इनकी स्तुतिके लिये कौन-सा स्तोत्र है? यह मैंने अभीतक नहीं सुना है। मुने! किस मन्त्रसे उनकी पूजा होनी चाहिये? सबसे पहले किसने तुलसीकी स्तुति की है? किस कारणसे वह आपके लिये भी पूजनीया हो गयीं? अहो! ये सब बातें आप मुझे बताइये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! नारदकी बात सुनकर भगवान् नारायणका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने पापोंका ध्वंस करनेवाली परम पुण्यमयी प्राचीन कथा कहनी आरम्भ कर दी।

भगवान् नारायण ऋषि बोले—मुने! भगवान् श्रीहरि तुलसीको पाकर उसके और लक्ष्मीके साथ आनन्द करने लगे। उन्होंने तुलसीको भी गौरव तथा सौभाग्यमें लक्ष्मीके समान बना दिया। लक्ष्मी और गङ्गाने तो तुलसीके नवसङ्गम, सौभाग्य और गौरवको सह लिया, किंतु सरस्वती क्रोधके कारण यह सब सहन न कर सकीं। सरस्वतीके द्वारा अपना अपमान होनेसे तुलसी अन्तर्धान हो गयीं। ज्ञानसम्पन्ना देवी तुलसी सिद्धयोगिनी एवं सर्वसिद्धेश्वरी थीं। अतः उन्होंने श्रीहरिकी आँखोंसे अपनेको सर्वत्र ओझल कर लिया। भगवान्ने उसे न देखकर सरस्वतीको समझाया और उससे आज्ञा लेकर वे तुलसीवनमें गये। लक्ष्मीबीज (श्रीं),

मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)—इन बीजोंका पूर्वमें उच्चारण करके 'वृन्दावनी' इस शब्दके अन्तमें (ङे) विभक्ति लगायी और अन्तमें वह्निजाया (स्वाहा)-का प्रयोग करके 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा' इस दशाक्षर-मन्त्रका उच्चारण किया। नारद! यह मन्त्रराज कल्पतरु है। जो इस मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, उसे निश्चय ही सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। घृतका दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प आदि उपचारोंसे तथा स्तोत्रद्वारा भगवान्‌से सुपूजित होनेपर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः वह वृक्षसे तुरंत बाहर निकल आयी और परम प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंकी शरणमें चली गयी। तब भगवान्‌ने उसे वर दिया—'देवी! तुम सर्वपूज्या हो जाओ। मैं स्वयं तुम्हें अपने मस्तक तथा वक्षःस्थलपर धारण करूँगा। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण देवता तुम्हें अपने मस्तकपर धारण करेंगे।' यों कहकर उसे साथ ले भगवान् श्रीहरि अपने स्थानपर लौट गये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् श्रीहरि विरहसे आतुर होकर वृन्दावन चले गये थे और वहाँ जाकर उन्होंने तुलसीकी पूजा करके इस प्रकार स्तुति की थी।

श्रीभगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी)-रूप वृक्ष तथा दूसरे वृक्ष एकत्र होते हैं, तब वृक्षसमुदाय अथवा वनको बुधजन 'वृन्दा' कहते हैं। ऐसी वृन्दा नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रिया तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ। जो देवी प्राचीनकालमें वृन्दावनमें प्रकट हुई थी, अतएव जिसे 'वृन्दावनी' कहते हैं, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ। जो असंख्य वृक्षोंमें निरन्तर पूजा प्राप्त करती है, अतः जिसका नाम 'विश्वपूजिता' पड़ा है, उस जगत्पूज्या देवीकी मैं उपासना करता हूँ। देवि! जिसने सदा अनन्त विश्वोंको पवित्र किया है, उस 'विश्वपावनी' देवीका मैं विरहसे आतुर होकर स्मरण करता हूँ। जिसके बिना अन्य पुष्प-समूहोंके अर्पण करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते, ऐसी 'पुष्पसारा'—पुष्पोंमें सारभूता शुद्धस्वरूपिणी तुलसी देवीका मैं शोकसे व्याकुल होकर दर्शन करना चाहता हूँ। संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्त परम आनन्दित हो जाता है, इसलिये 'नन्दिनी' नामसे जिसकी प्रसिद्धि है, वह भगवती तुलसी अब मुझपर प्रसन्न हो जाय। जिस देवीकी अखिल विश्वमें कहीं तुलना नहीं है, अतएव जो 'तुलसी' कहलाती है, उस अपनी प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। वह साध्वी तुलसी वृन्दारूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा है और उनकी सदा प्रियतमा होनेसे 'कृष्णजीवनी' नामसे विख्यात है। वह देवी तुलसी मेरे जीवनकी रक्षा करे*।

---

*नारायण उवाच—

अन्तर्हितायां तस्यां च गत्वा च तुलसीवनम् । हरिः सम्पूज्य तुष्टाव तुलसीं विरहातुरः॥

श्रीभगवानुवाच—

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च । विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥
पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने । तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम् । तेन विश्वपूजिताख्यां जगत्पूज्यां भजाम्यहम्॥
असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि यया सदा । तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना । तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम् । नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवताद्धि मे॥

इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि वहीं बैठ गये। इतनेमें उनके सामने साक्षात् तुलसी प्रकट हो गयी। उस साध्वीने उनके चरणोंमें तुरंत मस्तक झुका दिया। अपमानके कारण उस मानिनीकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे; क्योंकि पहले उसे बड़ा सम्मान मिल चुका था। ऐसी प्रिया तुलसीको देखकर प्रियतम भगवान् श्रीहरिने तुरंत उसे अपने हृदयमें स्थान दिया। साथ ही सरस्वतीसे आज्ञा लेकर उसे अपने महलमें ले गये। उन्होंने शीघ्र ही सरस्वतीके साथ तुलसीका प्रेम स्थापित करवाया। साथ ही भगवान्ने तुलसीको वर दिया—'देवि! तुम सर्वपूज्या और शिरोधार्या होओ। सब लोग तुम्हारा आदर एवं सम्मान करें।' भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर वह देवी परम संतुष्ट हो गयी। सरस्वतीने उसे हृदयसे लगाया और अपने पास बैठा लिया। नारद! लक्ष्मी और गङ्गा इन दोनों देवियोंने मन्द मुस्कानके साथ विनयपूर्वक साध्वी तुलसीका हाथ पकड़कर उसे भवनमें प्रवेश कराया। वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये देवी तुलसीके आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्रके रूपमें परिणत है। जो पुरुष तुलसीकी पूजा करके इस 'नामाष्टक' का पाठ करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है।* कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको देवी तुलसीका मङ्गलमय प्राकट्य हुआ और सर्वप्रथम भगवान् श्रीहरिने उसकी पूजा सम्पन्न की। जो इस कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर विश्वपावनी तुलसीकी भक्तिभावसे पूजा करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। जो कार्तिक महीनेमें भगवान् विष्णुको तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह दस हजार गोदानका फल निश्चितरूपसे पा जाता है। इस तुलसीनामाष्टकके स्मरणमात्रसे संतानहीन पुरुष पुत्रवान् बन जाता है। जिसे पत्नी न हो, उसे पत्नी मिल जाती है तथा बन्धुहीन व्यक्ति बहुत-से बान्धवोंको प्राप्त कर लेता है। इसके स्मरणसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति छुटकारा पा जाता है, भयभीत पुरुष निर्भय हो जाता है और पापी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

नारद! यह तुलसी-स्तोत्र बतला दिया। अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। तुम तो इस ध्यानको जानते ही हो। वेदकी कण्व-शाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है। ध्यानमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेकी अबाध शक्ति है। ध्यान करनेके पश्चात् बिना आवाहन किये भक्तिपूर्वक तुलसीके वृक्षमें षोडशोपचारसे इस देवीकी पूजा करनी चाहिये।

परम साध्वी तुलसी पुष्पोंमें सार हैं। ये पूजनीया तथा मनोहारिणी हैं। सम्पूर्ण पापरूपी ईंधनको भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निकी लपटके समान हैं। पुष्पोंमें अथवा देवियोंमें किसीसे भी इनकी तुलना नहीं हो सकी। इसीलिये उन सबमें पवित्ररूपा इन देवीको तुलसी कहा गया। ये सबके द्वारा अपने मस्तकपर धारण करने योग्य हैं। सभीको इन्हें पानेकी इच्छा रहती है। विश्वको पवित्र करनेवाली ये देवी जीवन्मुक्त

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च । तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥
कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती । तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम्॥
(प्रकृतिखण्ड २२। १८—२६)

*वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी । पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी॥
एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम् । यः पठेत् तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥
(प्रकृतिखण्ड २२। ३३-३४)

हैं। मुक्ति और भगवान् श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करना इनका स्वभाव है। ऐसी भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ।* विद्वान् पुरुष इस प्रकार ध्यान, पूजन और स्तवन करके देवी तुलसीको प्रणाम करे। नारद! तुलसीका उपाख्यान कह चुका। पुनः क्या सुनना चाहते हो। (अध्याय २२)

सावित्री देवीकी पूजा-स्तुतिका विधान

नारदजीने कहा—भगवन्! अमृतकी तुलना करनेवाली तुलसीकी कथा मैं सुन चुका। अब आप सावित्रीका उपाख्यान कहनेकी कृपा करें। देवी सावित्री वेदोंकी जननी हैं; ऐसा सुना गया है। ये देवी सर्वप्रथम किससे प्रकट हुईं? सबसे पहले इनकी किसने पूजा की और बादमें किन लोगोंने?

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदजननी सावित्रीकी पूजा की। तत्पश्चात् ये देवताओंसे सुपूजित हुईं। तदनन्तर विद्वानोंने इनका पूजन किया। इसके बाद भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने पहले इनकी उपासना की। तदनन्तर चारों वर्णोंके लोग इनकी आराधनामें संलग्न हो गये।

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! राजा अश्वपति कौन थे? किस कामनासे उन्होंने सावित्रीकी पूजा की थी?

भगवान् नारायण बोले—मुने! महाराज अश्वपति मद्रदेशके नरेश थे। शत्रुओंकी शक्ति नष्ट करना और मित्रोंके कष्टका निवारण करना उनका स्वभाव था। उनकी रानीका नाम मालती था। धर्मोंका पालन करनेवाली वह महाराज्ञी राजाके साथ इस प्रकार शोभा पाती थी, जैसे लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुके साथ। नारद! उस महासाध्वी रानीने वसिष्ठजीके उपदेशसे भक्तिपूर्वक भगवती सावित्रीकी आराधना की; परंतु उसे देवीकी ओरसे न तो कोई प्रत्यादेश मिला और न देवीजीने साक्षात् दर्शन ही दिये। अतः मनमें कष्टका अनुभव करती हुई दुःखसे घबराकर वह घर चली गयी। राजा अश्वपतिने उसे दुःखी देखकर नीतिपूर्ण वचनोंद्वारा समझाया और स्वयं भक्तिपूर्वक वे सावित्रीकी प्रसन्नताके निमित्त तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये। वहाँ रहकर इन्द्रियोंको वशमें करके उन्होंने बड़ी तपस्या की। तब भगवती सावित्रीके दर्शन तो नहीं हुए, किंतु उनका प्रत्यादेश (उत्तर) प्राप्त हुआ। महाराज अश्वपतिको यह आकाशवाणी सुनायी दी—'राजन्! तुम दस लाख गायत्रीका जप करो।' इतनेमें ही वहाँ मुनिवर पराशरजी पधार गये। राजाने मुनिको प्रणाम किया। मुनि राजासे कहने लगे।

पराशरने कहा—राजन्! गायत्रीका एक बारका जप दिनके पापको नष्ट कर देता है। दस बार जप करनेसे दिन और रातके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ बार जप करनेसे महीनोंका उपार्जित पाप नहीं ठहर सकता। एक हजारके जपसे वर्षोंके पाप भस्म हो जाते हैं। गायत्रीके एक लाख जपमें एक जन्मके तथा दस लाख जपमें तीन जन्मोंके भी पापोंको नष्ट करनेकी अमोघ शक्ति है। एक करोड़ जप करनेपर सम्पूर्ण जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। दस करोड़ गायत्री-जप ब्राह्मणोंको

---

*तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूज्यां मनोहराम् । कृत्स्नपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥
पुष्पेषु तुलनाप्यस्या नासीद् देवीषु वा मुने । पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥
शिरोधार्यां च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम् । जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम्॥
(प्रकृतिखण्ड २२। ४२—४४)

मुक्त कर देता है। द्विजको चाहिये कि वह पूर्वाभिमुख होकर बैठे। हाथको सर्पकी फणके समान कर ले। वह हाथ ऊर्ध्वमुख हो और ऊपरकी ओरसे कुछ-कुछ मुद्रित (मुँदा-सा) रहे। उसे किञ्चित् झुकाये हुए स्थिर रखे। अनामिकाके बिचले पर्वसे आरम्भ करके नीचे और बायें होते हुए तर्जनीके मूलभागतक अँगूठेसे स्पर्शपूर्वक जप करे। हाथमें जप करनेका यही क्रम है।* श्वेत कमलके बीजोंकी अथवा स्फटिक मणिकी माला बनाकर उसका संस्कार कर लेना चाहिये। इन्हीं वस्तुओंकी माला बनाकर तीर्थमें अथवा किसी देवताके मन्दिरमें जप करे। पीपलके सात पत्तोंपर संयमपूर्वक मालाको रखकर गोरोचनसे अनुलिप्त करे। फिर गायत्री-जपपूर्वक विद्वान् पुरुष उस मालाको स्नान करावे। तत्पश्चात् उसी मालापर विधिपूर्वक गायत्रीके सौ मन्त्रोंका जप करना चाहिये। अथवा, पञ्चगव्य या गङ्गाजलसे स्नान करा देनेपर भी मालाका संस्कार हो जाता है। इस तरह शुद्ध की हुई मालासे जप करना चाहिये।

राजर्षे! तुम इस क्रमसे दस लाख गायत्रीका जप करो। इससे तुम्हारे तीन जन्मोंके पाप क्षीण हो जायँगे। तत्पश्चात् तुम भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन कर सकोगे। राजन्! तुम प्रतिदिन मध्याह्न, सायं एवं प्रातःकालकी संध्या पवित्र होकर करना; क्योंकि संध्या न करनेवाला अपवित्र व्यक्ति सम्पूर्ण कर्मोंके लिये सदा अनधिकारी हो जाता है। वह दिनमें जो कुछ सत्कर्म करता है, उसके फलसे वञ्चित रहता है। जो प्रातः एवं सायंकालकी संध्या नहीं करता है, वह ब्राह्मण सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित कर्मोंसे बहिष्कृत माना जाता है। जो प्रातः और सायंकालकी संध्योपासना नहीं करता है, वह शूद्रकी भाँति समस्त द्विजोचित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देने योग्य हो जाता है। जीवनपर्यन्त त्रिकाल-संध्या करनेवाले ब्राह्मणमें तेज अथवा तपके प्रभावसे सूर्यके समान तेजस्विता आ जाती है। ऐसे ब्राह्मणकी चरणरजसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है। जिस ब्राह्मणके हृदयमें संध्याके प्रभावसे पाप स्थान नहीं पा सके हों, वह तेजस्वी द्विज जीवन्मुक्त ही है। उसके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। पाप उसे छोड़कर वैसे ही भाग जाते हैं; जैसे गरुड़को देखकर सर्पोंमें भगदड़ मच जाती है। त्रिकाल संध्या न करनेवाले द्विजके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको उसके पितर इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते तथा देवगण भी स्वतन्त्रतासे उसे लेना नहीं चाहते।

मुने! इस प्रकार कहकर मुनिवर पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीकी पूजाके सम्पूर्ण विधान तथा ध्यान आदि अभिलषित प्रयोग बतला दिये। उन महाराजको उपदेश देकर मुनिवर अपने स्थानको चले गये; फिर राजाने सावित्रीकी उपासना की। उन्हें उनके दर्शन प्राप्त हुए और अभीष्ट वर भी प्राप्त हो गया।

नारदने पूछा—भगवन्! मुनिवर पराशरने सावित्रीके किस ध्यान, किस पूजा-विधान, किस स्तोत्र और किस मन्त्रका उपदेश दिया था तथा राजाने किस विधिसे श्रुति-जननी सावित्रीकी पूजा करके किस वरको प्राप्त किया? किस विधानसे भगवती उनसे सुपूजित हुईं? मैं ये सभी प्रसङ्ग सुनना चाहता हूँ। सावित्रीकी श्रेष्ठ महिमा अत्यन्त रहस्यमयी है। कृपया मुझे सुनाइये।

---

* करं सर्पफणाकारं कृत्वा तं तूर्ध्वमुद्रितम्॥
आनम्रमूर्ध्वमचलं प्रजपेत् प्राङ्मुखो द्विजः। अनामिकामध्यदेशादधो वामक्रमेण च॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैष क्रमः करे।

(प्रकृतिखण्ड २३। १७—१९)

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीके दिन संयमपूर्वक रहकर चतुर्दशीके दिन व्रत करके शुद्ध समयमें भक्तिके साथ भगवती सावित्रीकी पूजा करनी चाहिये। यह चौदह वर्षका व्रत है। इसमें चौदह फल और चौदह नैवेद्य अर्पण किये जाते हैं। पुष्प एवं धूप, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके नैवेद्य अर्पण करनेका विधान है। एक मङ्गल-कलश स्थापित करके उसपर फल और पल्लव रख दे। द्विजको चाहिये कि गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वतीकी पूजा करके आवाहित कलशपर अपनी इष्टदेवी सावित्रीका पूजन करे। देवी सावित्रीका ध्यान सुनो। यजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है। स्तोत्र, पूजा-विधान तथा समस्त कामप्रद मन्त्र भी बतलाता हूँ। ध्यान यह है—

'भगवती सावित्रीका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान है। ये सदा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। इनकी प्रभा ऐसी है, मानो ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सहस्रों सूर्य हों। इनके प्रसन्न मुखपर मुस्कान छायी रहती है। रत्नमय भूषण इन्हें अलंकृत किये हुए हैं। दो अग्निशुद्ध वस्त्रोंको इन्होंने धारण कर रखा है। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही ये साकाररूपसे प्रकट हुई हैं। जगद्धाता प्रभुकी इन प्राणप्रियाको 'सुखदा', 'मुक्तिदा', 'शान्ता', 'सर्वसम्पत्स्वरूपा' तथा 'सर्वसम्पत्प्रदात्री' कहते हैं। ये वेदोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं (वेद-शास्त्र इनके स्वरूप हैं। मैं ऐसी वेदबीजस्वरूपा वेदमाता आप भगवती सावित्रीकी उपासना करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान करके अपने मस्तकपर पुष्प रखे। फिर श्रद्धाके साथ ध्यानपूर्वक कलशके ऊपर भगवती सावित्रीका आवाहन करे। वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सोलह प्रकारके उपचारोंसे व्रती पुरुष भगवतीकी पूजा करे। विधिपूर्वक पूजा और स्तुति सम्पन्न हो जानेपर देवेश्वरी सावित्रीको प्रणाम करे। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये देने योग्य षोडश उपचार हैं।

[आसन-समर्पण-मन्त्र]

दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा।
देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५५॥

देवि! यह आसन उत्तम काष्ठके सारतत्त्वसे बना हुआ है। साथ ही सुवर्ण आदिका बना हुआ आसन भी प्रस्तुत है। देवताओंके बैठनेयोग्य यह पुण्यप्रद आसन मैंने सदाके लिये आपकी सेवामें समर्पित कर दिया है।

[पाद्य-मन्त्र]

तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्।
पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया भक्त्या निवेदितम्॥ ५६॥

देवेश्वरि! यह तीर्थका पवित्र जल आपके लिये पाद्यके रूपमें प्रस्तुत है, जो अत्यन्त प्रीतिदायक तथा पुण्यप्रद है। पूजाका अङ्गभूत यह शुद्ध पाद्य मैंने भक्तिभावसे आपके चरणोंमें अर्पित किया है।

[अर्घ्य-मन्त्र]

पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्।
पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५७॥

देवि! यह शङ्खके जलसे युक्त तथा दूर्वा, पुष्प और अक्षतसे सम्पन्न परम पवित्र पुण्यदायक अर्घ्य मेरे द्वारा आपकी सेवामें निवेदन किया गया है।

[स्नानीय-मन्त्र]

सुगन्धिधात्रीतैलं च देहसौन्दर्यकारणम्।
मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्॥ ५८॥

देवि! जो शरीरके सौन्दर्यको बढ़ानेमें कारण है, वह सुगन्धित आँवलेका तैल और स्नानके लिये जल मैंने भक्तिभावसे सेवामें निवेदित किया है। आप यह सब स्वीकार करें।

[अनुलेपन-मन्त्र]

मलयाचलसम्भूतं देहशोभाविवर्द्धनम्।
सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५९॥

देवेश्वरि! यह मलयपर्वतसे उत्पन्न, सुगन्धयुक्त सुखद चन्दन, जो देहकी शोभाको बढ़ानेवाला है, मैंने अनुलेपनके रूपमें आपको अर्पित किया है।

[धूप-समर्पण-मन्त्र]

गन्धद्रव्योद्भवः पुण्यः प्रीतिदो दिव्यगन्धदः।
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥६०॥

देवि! जो सुगन्धित द्रव्योंसे बना हुआ, पवित्र, प्रीतिदायक तथा दिव्य सुगन्ध प्रकट करनेवाला है, ऐसा यह धूप मैंने भक्तिभावसे आपको अर्पित किया है। आप इसे ग्रहण करें।

[दीप-समर्पण-मन्त्र]

जगतां दर्शनीयं च दर्शनं दीप्तिकारणम्।
अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ६१॥

देवेश्वरि! जो जगत्के लिये दर्शनीय, दृष्टिका सहायक तथा दीप्ति (प्रकाश)-का कारण है, जिसे अन्धकारके विनाशका बीज कहा गया है, वह दिव्य दीप मेरे द्वारा आपकी सेवामें निवेदन किया गया है।

[नैवेद्य-समर्पण-मन्त्र]

तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्।
पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ ६२॥

देवि! जो तुष्टि, पुष्टि, प्रीति तथा पुण्य प्रदान करनेवाला तथा भूख मिटानेमें समर्थ है, ऐसा सुस्वादु नैवेद्य आपके समक्ष प्रस्तुत है, आप इसे स्वीकार करें।

[ताम्बूल-समर्पण-मन्त्र]

ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया भक्त्या निवेदितम्॥ ६३॥

देवेश्वरि! यह सुन्दर, रमणीय, संतोषप्रद, पुष्टिकारक एवं कर्पूर आदिसे सुवासित ताम्बूल मैंने भक्तिभावसे अर्पित किया है।

[शीतल जल-समर्पण-मन्त्र]

सुशीतलं वासितं च पिपासानाशकारणम्।
जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम्॥ ६४॥

हे देवि! यह प्यास मिटानेमें समर्थ तथा सम्पूर्ण जगत्का जीवनरूप सुवासित एवं सुशीतल जल अर्पित है, इसे स्वीकार करें।

[वस्त्र-समर्पण-मन्त्र]

देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्द्धनम्।
कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्॥ ६५॥

देवेश्वरि! यह सूती और रेशमी वस्त्र देहकी शोभाका तो स्वरूप ही है, सभामें शरीरकी विशेष शोभाकी वृद्धि करनेवाला है। अतः इसे ग्रहण करें।

[भूषण-समर्पण-मन्त्र]

काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा।
सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥ ६६॥

देवि! सुवर्ण आदिका बना हुआ यह आभूषण सेवामें अर्पित है। यह स्वयं तो सुन्दर है ही; जो इसे धारण करता है, उसकी शोभाको भी यह सदा बढ़ाता रहता है। इससे सुख और पुण्यकी प्राप्ति होती है, अतः आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें।

[माल्य-समर्पण-मन्त्र]

नानापुष्पविनिर्माणं बहुभाससमन्वितम्।
प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम्॥ ६७॥

देवेश्वरि! नाना प्रकारके फूलोंका बना हुआ यह सुन्दर हार अत्यन्त प्रकाशमान है। इससे आपको प्रसन्नता प्राप्त होगी। अतः कृपया इस पुण्यदायक हारको आप ग्रहण करें।

[गन्ध-समर्पण-मन्त्र]

सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः।
पुण्यप्रदश्च गन्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम्॥ ६८॥

देवि! यह सर्वमङ्गलरूप एवं सर्वमङ्गलदायक, श्रेष्ठ, पुण्यप्रद तथा सुगन्धित गन्ध आपकी सेवामें समर्पित है, इसे स्वीकार कीजिये।

[आचमनीय-समर्पण-मन्त्र]

शुद्धं शुद्धिप्रदं चैव शुद्धानां प्रीतिदं महत्।
रम्यमाचमनीयं च मया दत्तं प्रगृह्यताम्॥ ६९॥

देवेश्वरि! मेरा दिया हुआ यह रमणीय आचमनीय शुद्ध होनेके साथ ही शुद्धिदायक भी है। इससे शुद्ध पुरुषोंको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती है। आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें।

[शय्या-समर्पण-मन्त्र]

रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्।
सुखदं पुण्यदं चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥ ७०॥

देवि! यह सुन्दर शय्या रत्नसार आदिकी बनी हुई है। इसपर फूल बिछे हैं और चन्दनका छिड़काव हुआ है। अतएव यह सुखदायिनी और पुण्यदायिनी भी है। आप इसे ग्रहण करें।

[फल-समर्पण-मन्त्र]

नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्।
फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम्॥ ७१॥

देवेश्वरि! अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न तथा नाना रूपोंमें उपलब्ध अभीष्ट फलस्वरूप एवं अभिलषित फलदायक यह फल सेवामें प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करें।

[सिन्दूर-समर्पण-मन्त्र]

सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्द्धनम्।
पूरणं भूषणानां च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥ ७२॥

देवि! यह सुन्दर एवं सुरम्य सिन्दूर भालकी शोभाको बढ़ानेवाला है। इसे आभूषणोंका पूरक माना गया है। आप इसे ग्रहण करें।

[यज्ञोपवीत-समर्पण-मन्त्र]

विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्।
पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्॥ ७३॥

देवेश्वरि! पवित्र सूतका बना हुआ यह यज्ञोपवीत विशुद्ध ग्रन्थियोंसे युक्त है। इसे वेदमन्त्रसे पवित्र किया गया है। कृपया स्वीकार करें।

विद्वान् पुरुष इन द्रव्योंको मूलमन्त्रसे भगवती सावित्रीके लिये अर्पण करके स्तोत्र पढ़े। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे। 'सावित्री' इस शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग होना चाहिये। इसके पूर्व लक्ष्मी, माया और कामबीजका उच्चारण हो। '**श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा**' यह अष्टाक्षर-मन्त्र ही मूलमन्त्र कहा गया है। भगवती सावित्रीका सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र माध्यन्दिनी शाखामें वर्णित है। ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूप इस स्तोत्रको तुम्हारे सामने मैं व्यक्त करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें गोलोकधाममें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने सावित्रीको ब्रह्माके साथ जानेकी आज्ञा दी; परंतु सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक जानेको प्रस्तुत नहीं हुईं। तब भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार ब्रह्माजी भक्तिपूर्वक वेदमाता सावित्रीकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर सावित्रीने संतुष्ट होकर ब्रह्माको पति बनाना स्वीकार कर लिया। ब्रह्माजीने सावित्रीकी इस प्रकार स्तुति की।

ब्रह्माजीने कहा—सुन्दरि! तुम नारायणस्वरूपा एवं नारायणी हो। सनातनी देवि! भगवान् नारायणसे ही तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करो। देवि! तुम परम तेजःस्वरूपा हो। तुम्हारे प्रत्येक अङ्गमें परम आनन्द व्याप्त है। द्विजातियोंके लिये जातिस्वरूपा सुन्दरि! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सुन्दरि! तुम नित्या, नित्यप्रिया तथा नित्यानन्दस्वरूपा हो। तुम अपने सर्वमङ्गलमय रूपसे मुझपर प्रसन्न हो जाओ। शोभने! तुम ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्व हो। तुम सर्वोत्तम एवं मन्त्रोंकी सार-तत्त्व हो। तुम्हारी उपासनासे सुख और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सुन्दरि! तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्नि हो। ब्रह्मतेज प्रदान करना तुम्हारा सहज गुण है! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरसे जो भी

पाप करता है, वे सभी पाप तुम्हारे नामका स्मरण करते ही भस्म हो जायँगे।*

इस प्रकार स्तुति करके जगद्धाता ब्रह्माजी वहीं गोलोककी सभामें विराजमान हो गये। तब सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोकमें जानेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। मुने! इसी स्तोत्रराजसे राजा अश्वपतिने भगवती सावित्रीकी स्तुति की थी, तब उन देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये। राजाने उनसे मनोऽभिलषित वर प्राप्त किया। यह स्तवराज परम पवित्र है। पुरुष यदि संध्याके पश्चात् इस स्तवका पाठ करता है तो चारों वेदोंके पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसी फलका वह अधिकारी हो जाता है।

(अध्याय २३)

राजा अश्वपतिद्वारा सावित्रीकी उपासना तथा फलस्वरूप सावित्री नामक कन्याकी उत्पत्ति, सत्यवान्‌के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्‌की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! जब राजा अश्वपतिने विधिपूर्वक भगवती सावित्रीकी पूजा करके इस स्तोत्रसे उनका स्तवन किया, तब देवी उनके सामने प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह ऐसा प्रकाशमान था, मानो हजारों सूर्य एक साथ उदित हो गये हों। साध्वी सावित्री अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसती हुई राजा अश्वपतिसे इस प्रकार बोलीं, मानो माता अपने पुत्रसे बात कर रही हो। उस समय देवी सावित्रीकी प्रभासे चारों दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं।

देवी सावित्रीने कहा—महाराज! तुम्हारे मनकी जो अभिलाषा है, उसे मैं जानती हूँ। तुम्हारी पत्नीके सम्पूर्ण मनोरथ भी मुझसे छिपे नहीं हैं। अतः सब कुछ देनेके लिये मैं निश्चितरूपसे प्रस्तुत हूँ। राजन्! तुम्हारी परम साध्वी रानी कन्याकी अभिलाषा करती है और तुम पुत्र चाहते हो; क्रमसे दोनों ही प्राप्त होंगे।

इस प्रकार कहकर भगवती सावित्री ब्रह्मलोकमें चली गयीं और राजा भी अपने घर लौट आये। यहाँ समयानुसार पहले कन्याका जन्म हुआ। भगवती सावित्रीकी आराधनासे उत्पन्न हुई लक्ष्मीकी कलास्वरूपा उस कन्याका नाम राजा अश्वपतिने सावित्री रखा। वह कन्या समयानुसार शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ने लगी। समयपर उस सुन्दरी कन्यामें नवयौवनके लक्षण प्रकट हो गये। द्युमत्सेनकुमार सत्यवान्‌का उसने पतिरूपमें वरण किया; क्योंकि सत्यवान् सत्यवादी, सुशील एवं नाना प्रकारके उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थे। राजाने रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत करके अपनी कन्या सावित्री सत्यवान्‌को समर्पित कर दी। सत्यवान् भी श्वशुरकी ओरसे मिले हुए बड़े भारी दहेजके साथ उस कन्याको लेकर अपने घर चले गये।

---

*ब्रह्मोवाच

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि। नारायणात्समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि। सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे। ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते द्विजः। तत् ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति॥

(प्रकृतिखण्ड २३ । ७९—८४)

एक वर्ष व्यतीत हो जानेके पश्चात् सत्यपराक्रमी सत्यवान् अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक फल और ईंधन लानेके लिये अरण्यमें गये। उनके पीछे-पीछे साध्वी सावित्री भी गयी। दैववश सत्यवान् वृक्षसे गिरे और उनके प्राण प्रयाण कर गये। मुने! यमराजने उनके अङ्गुष्ठ-सदृश जीवात्माको सूक्ष्म शरीरके साथ बाँधकर यमपुरीके लिये प्रस्थान किया। तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे लग गयी। संयमनीपुरीके स्वामी साधुश्रेष्ठ यमराजने सुन्दरी सावित्रीको पीछे-पीछे आती देख मधुर वाणीमें कहा।

धर्मराजने कहा—अहो सावित्री! तुम इस मानव-देहसे कहाँ जा रही हो? यदि पतिदेवके साथ जानेकी तुम्हारी इच्छा है तो पहले इस शरीरका त्याग कर दो। मर्त्यलोकका प्राणी इस पाञ्चभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोकमें नहीं जा सकता। नश्वर व्यक्ति नश्वर लोकमें ही जानेका अधिकारी है। साध्वि! तुम्हारा पति सत्यवान् भारतवर्षमें आया था। उसकी आयु अब पूर्ण हो चुकी, अतएव अपने किये हुए कर्मका फल भोगनेके लिये अब वह मेरे लोकको जा रहा है। प्राणीका कर्मसे ही जन्म होता है और कर्मसे ही उसकी मृत्यु भी होती है। सुख, दुःख, भय और शोक—ये सब कर्मके अनुसार प्राप्त होते रहते हैं। कर्मके प्रभावसे जीव इन्द्र भी हो सकता है। अपना उत्तम कर्म उसे ब्रह्मपुत्रतक बनानेमें समर्थ है। अपने शुभ कर्मकी सहायतासे प्राणी श्रीहरिका दास बनकर जन्म आदि विकारोंसे मुक्त हो सकता है। सम्पूर्ण सिद्धि, अमरत्व तथा श्रीहरिके सालोक्यादि चार प्रकारके पद भी अपने शुभ कर्मके प्रभावसे मिल सकते हैं। देवता, मनु, राजेन्द्र, शिव, गणेश, मुनीन्द्र, तपस्वी, क्षत्रिय, वैश्य, म्लेच्छ, स्थावर, जङ्गम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, अधिपति, वृक्ष, पशु, किरात, अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु, कीड़े, दैत्य, दानव तथा असुर—ये सभी योनियाँ प्राणीको अपने कर्मके अनुसार प्राप्त होती हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इस प्रकार सावित्रीसे कहकर यमराज मौन हो गये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! पतिव्रता सावित्रीने यमराजकी बात सुनकर परम भक्तिके साथ उनका स्तवन किया; फिर वह उनसे पूछने लगी।

सावित्रीने पूछा—भगवन्! कौन कार्य है, किस कर्मके प्रभावसे क्या होता है, कैसे फलमें कौन कर्म हेतु है, कौन देह है और कौन देही है अथवा संसारमें प्राणी किसकी प्रेरणासे कर्म करता है? ज्ञान, बुद्धि, शरीरधारियोंके प्राण, इन्द्रियाँ तथा उनके लक्षण एवं देवता, भोक्ता, भोजयिता, भोज, निष्कृति तथा जीव और परमात्मा—ये सब कौन और क्या हैं? इन सबका परिचय देनेकी कृपा कीजिये।

धर्मराज बोले—साध्वी सावित्री! कर्म दो प्रकारके हैं—शुभ और अशुभ। वेदोक्त कर्म शुभ हैं। इनके प्रभावसे प्राणी कल्याणके भागी होते हैं। वेदमें जिसका स्थान नहीं है, वह अशुभ कर्म नरकप्रद है। भगवान् विष्णुकी जो संकल्परहित अहैतुकी सेवा की जाती है, उसे 'कर्म-निर्मूलरूपा' कहते हैं। ऐसी ही सेवा 'हरि-भक्ति' प्रदान करती है। कौन कर्मके फलका भोक्ता है और कौन निर्लिप्त—इसका उत्तर यह है। श्रुतिका वचन है कि श्रीहरिका जो भक्त है, वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय—ये उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते । साध्वि! श्रुतिमें मुक्ति भी दो प्रकारकी बतायी गयी है, जो सर्वसम्मत है। एकको 'निर्वाणप्रदा' कहते हैं और दूसरीको 'हरिभक्तिप्रदा'। मनुष्य इन दोनोंके अधिकारी हैं। वैष्णव पुरुष हरिभक्तिस्वरूपा मुक्ति चाहते हैं और अन्य साधु-जन निर्वाणप्रदा मुक्तिकी इच्छा करते

हैं। कर्मका जो बीजरूप है, वही सदा फल प्रदान करनेवाला है। कर्म कोई दूसरी वस्तु नहीं, भगवान् श्रीकृष्णका ही रूप है। वे भगवान् प्रकृतिसे परे हैं। कर्म भी इन्हींसे होता है; क्योंकि वे उसके हेतुरूप हैं। जीव कर्मका फल भोगता है; आत्मा तो सदा निर्लिप्त ही है। देही आत्माका प्रतिबिम्ब है, वही जीव है। देह तो सदासे नश्वर है। पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश—ये पाँच भूत उसके उपादान हैं। परमात्माके सृष्टि-कार्यमें ये सूत्ररूप हैं। कर्म करनेवाला जीव देही है। वही भोक्ता और अन्तर्यामीरूपसे भोजयिता भी है। सुख एवं दुःखके साक्षात् स्वरूप वैभवका ही दूसरा नाम भोग है। निष्कृति मुक्तिको ही कहते हैं। सदसत्सम्बन्धी विवेकके आदिकारणका नाम ज्ञान है। इस ज्ञानके अनेक भेद हैं। घट-पटादि विषय तथा उनका भेद ज्ञानके भेदमें कारण कहा जाता है। विवेचनमयी शक्तिको 'बुद्धि' कहते हैं। श्रुतिमें ज्ञानबीज नामसे इसकी प्रसिद्धि है। वायुके ही विभिन्न रूप प्राण हैं। इन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें शक्तिका संचार होता है। जो इन्द्रियोंमें प्रमुख, परमात्माका अंश, संशयात्मक, कर्मोंका प्रेरक, प्राणियोंके लिये दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धिका एक भेद है, उसे 'मन' कहा गया है। यह शरीरधारियोंका अङ्ग तथा सम्पूर्ण कर्मोंका प्रेरक है। यही इन्द्रियोंको विषयोंमें लगाकर दुःखी बनानेके कारण शत्रुरूप हो जाता है और सत्कार्यमें लगाकर सुखी बनानेके कारण मित्ररूप है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं। सूर्य, वायु, पृथ्वी और वाणी आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं। जो प्राण एवं देहादिको धारण करता है, उसीकी 'जीव' संज्ञा है। प्रकृतिसे परे जो सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म हैं, उन्हींको 'परमात्मा' कहते हैं। ये कारणोंके भी कारण हैं। ये स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

वत्से! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने शास्त्रानुसार बतला दिया। यह विषय ज्ञानियोंके लिये परम ज्ञानमय है। अब तुम सुखपूर्वक लौट जाओ।

सावित्रीने कहा—प्रभो! आप ज्ञानके अथाह समुद्र हैं। अब मैं इन अपने प्राणनाथ और आपको छोड़कर कैसे कहाँ जाऊँ? मैं जो-जो बातें पूछती हूँ, उसे आप मुझे बतानेकी कृपा करें। जीव किस कर्मके प्रभावसे किन-किन योनियोंमें जाता है? पिताजी! कौन कर्म स्वर्गप्रद है और कौन नरकप्रद? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी मुक्त हो जाता है तथा श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेके लिये कौन-सा कर्म कारण होता है? किस कर्मके फलस्वरूप प्राणी रोगी होता है और किस कर्मफलसे नीरोग? दीर्घजीवी और अल्पजीवी होनेमें कौन-कौनसे कर्म प्रेरक हैं? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी सुखी होता है और किस कर्मके प्रभावसे दुःखी? किस कर्मसे मनुष्य अङ्गहीन, एकाक्ष, बधिर, अन्धा, पङ्गु, उन्मादी, पागल तथा अत्यन्त लोभी और नरघाती होता है एवं सिद्धि और सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होनेमें कौन कर्म सहायक है? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी ब्राह्मण होता है और किस कर्मके प्रभावसे तपस्वी? स्वर्गादि भोग प्राप्त होनेमें कौन कर्म साधन है? किस कर्मसे प्राणी वैकुण्ठमें जाता है? ब्रह्मन्! गोलोक निरामय और सम्पूर्ण स्थानोंसे उत्तम धाम है। किस कर्मके प्रभावसे उसकी प्राप्ति हो सकती है? कितने प्रकारके नरक हैं और उनकी कितनी संख्या और उनके क्या-क्या नाम हैं? कौन किस नरकमें जाता है और कितने समयतक वहाँ यातना भोगता है? किस कर्मके फलसे पापियोंके शरीरमें कौन-सी व्याधि उत्पन्न होती है? भगवन्! मैंने ये जो-जो प्रश्न किये हैं, इन सबके उत्तर देनेकी आप कृपा करें। (अध्याय २४-२५)

सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर, सावित्रीको वरदान

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! सावित्रीके वचन सुनकर यमराजके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हँसकर प्राणियोंके कर्म-विपाक कहनेके लिये उद्यत हो गये।

धर्मराजने कहा—प्यारी बेटी! अभी तुम हो तो अल्प वयकी बालिका, किंतु तुम्हें पूर्ण विद्वानों, ज्ञानियों और योगियोंसे भी बढ़कर ज्ञान प्राप्त है। पुत्री! भगवती सावित्रीके वरदानसे तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम उन देवीकी कला हो। राजाने तपस्याके प्रभावसे सावित्री-जैसी कन्यारत्नको प्राप्त किया है। जिस प्रकार लक्ष्मी भगवान् विष्णुके, भवानी शंकरके, राधा श्रीकृष्णके, सावित्री ब्रह्माके, मूर्ति धर्मके, शतरूपा मनुके, देवहूति कर्दमके, अरुन्धती वसिष्ठके, अदिति कश्यपके, अहल्या गौतमके, शची इन्द्रके, रोहिणी चन्द्रमाके, रति कामदेवके, स्वाहा अग्निके, स्वधा पितरोंके, संज्ञा सूर्यके, वरुणानी वरुणके, दक्षिणा यज्ञके, पृथ्वी वाराहके और देवसेना कार्तिकेयके पास सौभाग्यवती प्रिया बनकर शोभा पाती हैं, तुम भी वैसी ही सत्यवान्‌की प्रिया बनो। मैंने यह तुम्हें वर दे दिया। महाभागे! इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हें अभीष्ट हो, वह वर माँगो। मैं तुम्हें सभी अभिलषित वर देनेको तैयार हूँ।

सावित्री बोली—महाभाग! सत्यवान्‌के औरस अंशसे मुझे सौ पुत्र प्राप्त हों—यही मेरा अभिलषित वर है। साथ ही, मेरे पिता भी सौ पुत्रोंके जनक हों। मेरे श्वशुरको नेत्र-लाभ हो और उन्हें पुनः राज्यश्री प्राप्त हो जाय, यह भी मैं चाहती हूँ। जगत्प्रभो! सत्यवान्‌के साथ मैं बहुत लंबे समयतक रहकर अन्तमें भगवान् श्रीहरिके धाममें चली जाऊँ, यह वर भी देनेकी आप कृपा करें।

प्रभो! मुझे जीवके कर्मका विपाक तथा विश्वसे तर जानेका उपाय भी सुननेके लिये मनमें महान् कौतूहल हो रहा है; अतः आप यह भी बतावें।

धर्मराजने कहा—महासाध्वि! तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे। अब मैं प्राणियोंका कर्म-विपाक कहता हूँ, सुनो। भारतवर्षमें ही शुभ-अशुभ कर्मोंका जन्म होता है—यहींके कर्मोंको 'शुभ' या 'अशुभ' की संज्ञा दी गयी है। यहाँ सर्वत्र पुण्यक्षेत्र है, अन्यत्र नहीं; अन्यत्र प्राणी केवल कर्मोंका फल भोगते हैं। पतिव्रते! देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा मनुष्य—ये सभी कर्मके फल भोगते हैं। परंतु सबका जीवन समान नहीं है। उनमेंसे मानव ही कर्मका जनक होता है अर्थात् मनुष्ययोनिमें ही शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं; जिनका फल सर्वत्र सभी योनियोंमें भोगना पड़ता है। विशिष्ट जीवधारी—विशेषतः मानव ही सब योनियोंमें कर्मोंका फल भोगते हैं और सभी योनियोंमें भटकते हैं। वे पूर्व-जन्मका किया हुआ शुभाशुभ कर्म भोगते हैं। शुभ कर्मके प्रभावसे वे स्वर्गलोकमें जाते हैं और अशुभ कर्मसे उन्हें नरकमें भटकना पड़ता है। कर्मका निर्मूलन हो जानेपर मुक्ति होती है। साध्वि! मुक्ति दो प्रकारकी बतलायी गयी है—एक निर्वाणस्वरूपा और दूसरी परमात्मा श्रीकृष्णकी सेवारूपा। बुरे कर्मसे प्राणी रोगी होता है और शुभ कर्मसे आरोग्यवान्। वह अपने शुभाशुभ कर्मके अनुसार दीर्घजीवी, अल्पायु, सुखी एवं दुःखी होता है। कुत्सित कर्मसे ही प्राणी अङ्गहीन, अंधे-बहरे आदि होते हैं। उत्तम कर्मके फलस्वरूप सिद्धि आदिकी प्राप्ति होती है।

देवि! सामान्य बातें बतायी गयीं; अब विशेष बातें सुनो। सुन्दरि! यह अतिशय दुर्लभ विषय शास्त्रों और पुराणोंमें वर्णित है। इसे सबके सामने नहीं कहना चाहिये। सभी जातियोंके लिये भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म पाना परम दुर्लभ है। साध्वि! उन सब जातियोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ माना

जाता है। वह समस्त कर्मोंमें प्रशस्त होता है। भारतवर्षमें विष्णुभक्त ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है। पतिव्रते! वैष्णवके भी दो भेद हैं—सकाम और निष्काम। सकाम वैष्णव कर्मप्रधान होता है और निष्काम वैष्णव केवल भक्त। सकाम वैष्णव कर्मोंका फल भोगता है और निष्काम वैष्णव शुभाशुभ भोगके उपद्रवसे दूर रहता है।

साध्वि! ऐसा निष्काम वैष्णव शरीर त्यागकर भगवान् विष्णुके निरामय पदको प्राप्त कर लेता है। ऐसे निष्काम वैष्णवोंका संसारमें पुनरागमन नहीं होता। द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म परमेश्वर हैं। उनकी उपासना करनेवाले भक्तपुरुष अन्तमें दिव्य शरीर धारण करके गोलोकमें जाते हैं। सकाम वैष्णव पुरुष उच्च वैष्णव लोकोंमें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं। द्विजातियोंके कुलमें उनका जन्म होता है। वे भी कालक्रमसे निष्काम भक्त बन जाते और भगवान् उन्हें निर्मल भक्ति भी अवश्य देते हैं। वैष्णव ब्राह्मणसे भिन्न जो सकाम मनुष्य हैं, वे विष्णुभक्तिसे रहित होनेके कारण किसी भी जन्ममें विशुद्ध बुद्धि नहीं पा सकते। साध्वि! जो तीर्थस्थानमें रहकर सदा तपस्या करते हैं, वे द्विज ब्रह्माके लोकमें जाते हैं और पुण्यभोगके पश्चात् पुनः भारतवर्षमें आ जाते हैं। भारतमें रहकर अपने कर्तव्य-कर्मोंमें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण तथा सूर्यभक्त शरीर त्यागनेपर सूर्यलोकमें जाते हैं और पुण्यभोगके पश्चात् पुनः भारतवर्षमें जन्म पाते हैं। अपने धर्ममें निरत रहकर शिव, शक्ति तथा गणपतिकी उपासना करनेवाले ब्राह्मण शिवलोकमें जाते हैं; फिर उन्हें लौटकर भारतवर्षमें आना पड़ता है। जो धर्मरहित होनेपर भी निष्कामभावसे श्रीहरिका भजन करते हैं, वे भी भक्तिके बलसे श्रीहरिके धाममें चले जाते हैं।

साध्वि! जो अपने धर्मका पालन नहीं करते, वे आचारहीन, कामलोलुप लोग अवश्य ही नरकमें जाते हैं। चारों ही वर्ण अपने धर्ममें कटिबद्ध रहनेपर ही शुभकर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं। जो अपना कर्तव्य-कर्म नहीं करते, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं। कर्मका फल भोगनेके लिये वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते । अतएव चारों वर्णोंके लिये अपने धर्मका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

अपने धर्ममें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण, स्वधर्मनिरत विप्रको अपनी कन्या देनेके फलस्वरूप चन्द्रलोकको जाते हैं और वहाँ चौदह मन्वन्तर कालतक रहते हैं। साध्वि! यदि कन्याको अलंकृत करके दानमें दिया जाय तो उससे दुगुना फल प्राप्त होता है। उन साधु पुरुषोंमें यदि कामना हो तब तो वे चन्द्रमाके लोकमें जाते हैं। निष्कामभावसे दान करें तो वे भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाते हैं। गव्य (दूध), चाँदी, सुवर्ण, वस्त्र, घृत, फल और जल ब्राह्मणोंको देनेवाले पुण्यात्मा पुरुष चन्द्रलोकमें जाते हैं। साध्वि! एक मन्वन्तरतक वे वहाँ सुविधापूर्वक निवास करते हैं। उस दानके प्रभावसे उन्हें वहाँ सुदीर्घ कालतक निवास प्राप्त होता है। पतिव्रते! पवित्र ब्राह्मणको सुवर्ण, गौ और ताम्र आदि द्रव्यका दान करनेवाले सत्पुरुष सूर्यलोकमें जाते हैं। वे भय-बाधासे शून्य हो, उस विस्तृत लोकमें सुदीर्घ कालतक वास करते हैं। जो ब्राह्मणोंको पृथ्वी अथवा प्रचुर धान्य दान करता है, वह भगवान् विष्णुके परम सुन्दर श्वेतद्वीपमें जाता है और दीर्घकालतक वहाँ वास करता है। भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गृह-दान करनेवाले पुरुष स्वर्गलोकमें जाते और वहाँ दीर्घकालतक निवास करते हैं; वे उस लोकमें उतने वर्षोंतक रहते हैं, जितनी संख्यामें उस दान-गृहके रजःकण हैं। मनुष्य जिस-जिस देवताके उद्देश्यसे गृह-दान करता है, अन्तमें उसी देवताके लोकमें जाता है और घरमें जितने धूलिकण हैं, उतने वर्षोंतक वहाँ रहता

है। अपने घरपर दान करनेकी अपेक्षा देवमन्दिरमें दान करनेसे चौगुना, पूर्तकर्म (वापी, कूप, तड़ाग आदिके निर्माण)-के अवसरपर करनेसे सौगुना तथा किसी श्रेष्ठ तीर्थस्थानमें करनेसे आठगुना फल होता है—यह ब्रह्माजीका वचन है।

समस्त प्राणियोंके उपकारके लिये तड़ागका दान करनेवाला दस हजार वर्षोंकी अवधि लेकर जनलोकमें जाता है। बावलीका दान करनेसे मनुष्यको सदा सौगुना फल मिलता है। वह सेतु (पुल)-का दान करनेपर तड़ागके दानका भी पुण्यफल प्राप्त कर लेता है। तड़ागका प्रमाण चार हजार धनुष[१] चौड़ा और उतना ही लंबा निश्चित किया गया है। इससे जो लघु प्रमाणमें है, वह वापी कही जाती है। सत्पात्रको दी हुई कन्या दस वापीके समान पुण्यप्रदा होती है। यदि उस कन्याको अलंकृत करके दान किया जाय तो दुगुना फल मिलता है। तड़ागके दानसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, वही उसके भीतरसे कीचड़ और मिट्टी निकालनेसे सुलभ हो जाता है। वापीके कीचड़को दूर करानेसे उसके निर्माण कराने-जितना फल होता है। पतिव्रते! जो पुरुष पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह हजारों वर्षोंके लिये भगवान् विष्णुके तपोलोकमें जाता है। सावित्री! जो सबकी भलाईके लिये पुष्पोद्यान लगाता है, वह दस हजार वर्षोंतक ध्रुवलोकमें स्थान पाता है। पतिव्रते! विष्णुके उद्देश्यसे विमानका दान करनेवाला मानव एक मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें वास करता है। यदि वह विमान विशाल और चित्रोंसे सुसज्जित किया गया हो तो उसके दानसे चौगुना फल प्राप्त होता है। शिविका-दानमें उससे आधा फल होना निश्चित है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिके उद्देश्यसे मन्दिराकार झूला दान करता है, वह अति दीर्घकालतक भगवान् विष्णुके लोकमें वास करता है। पतिव्रते! जो सड़क बनवाता और उसके किनारे लोगोंके ठहरनेके लिये महल (धर्मशाला) बनवा देता है, वह सत्पुरुष हजारों वर्षोंतक इन्द्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। ब्राह्मणों अथवा देवताओंको दिया हुआ दान समान फल प्रदान करता है। जो पूर्वजन्ममें दिया गया है, वही जन्मान्तरमें प्राप्त होता है। जो नहीं दिया गया है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है? पुण्यवान् पुरुष स्वर्गीय सुख भोगकर भारतवर्षमें जन्म पाता है। उसे क्रमशः उत्तम-से-उत्तम ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्गसुख भोगनेके अनन्तर पुनः ब्राह्मण ही होता है। यही नियम क्षत्रिय आदिके लिये भी है। क्षत्रिय अथवा वैश्य तपस्याके प्रभावसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है—ऐसी बात श्रुतिमें सुनी जाती है। धर्मरहित ब्राह्मण नाना योनियोंमें भटकते हैं और कर्मभोगके पश्चात् फिर ब्राह्मणकुलमें ही जन्म पाते हैं। कितना ही काल क्यों न बीत जाय, बिना भोग किये कर्म क्षीण नहीं हो सकते। अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मोंका फल प्राणियोंको अवश्य भोगना पड़ता है। देवता और तीर्थकी सहायता तथा कायव्यूहसे प्राणी शुद्ध हो जाता है।

साध्वि! ये कुछ बातें तो तुम्हें बतला दीं, अब आगे और क्या सुनना चाहती हो?

(अध्याय २६)

१-चार हाथकी लंबाईको धनुषका प्रमाण कहते हैं।

सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर तथा सावित्रीके द्वारा धर्मराजको प्रणाम-निवेदन

सावित्रीने कहा—धर्मराज! जिस कर्मके प्रभावसे पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्ग अथवा अन्य लोकमें जाते हैं, वह मुझे बतानेकी कृपा करें।

धर्मराज बोले—पतिव्रते! ब्राह्मणको अन्न दान करनेवाला पुरुष इन्द्रलोकमें जाता है और दान किये हुए अन्नमें जितने दाने होते हैं उतने वर्षोंतक वह वहाँ निवास पाता है। अन्नदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा। इसमें न कभी पात्रकी परीक्षाकी आवश्यकता होती है और न समयकी*। साध्वि! यदि ब्राह्मणों अथवा देवताओंको आसन दान किया जाय तो हजारों वर्षोंतक अग्निदेवके लोकमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाती है। जो पुरुष ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौ दान करता है, वह गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित रहता है। यह गोदान साधारण दिनोंकी अपेक्षा पर्वके समय चौगुना, तीर्थमें सौगुना और नारायणक्षेत्रमें कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो मानव भारतवर्षमें रहकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गौ प्रदान करता है, वह हजारों वर्षोंतक चन्द्रलोकमें रहनेका अधिकारी बन जाता है। दुग्धवती गौ ब्राह्मणको देनेवाला पुरुष उसके रोमपर्यन्त वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो ब्राह्मणको वस्त्रसहित शालग्राम-शिलाका दान करता है, वह चन्द्रमा और सूर्यके स्थितिकालतक वैकुण्ठमें सम्मानपूर्वक रहता है। ब्राह्मणको सुन्दर स्वच्छ छत्र दान करनेवाला व्यक्ति हजारों वर्षोंतक वरुणके लोकमें आनन्द करता है। साध्वि! जो ब्राह्मणको दो पादुकाएँ प्रदान करता है, उसे दस हजार वर्षतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। मनोहर दिव्य शय्या ब्राह्मणको देनेसे दीर्घकालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा होती है। जो देवताओं अथवा ब्राह्मणोंको दीप-दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें वास करता है। उस पुण्यसे उसके नेत्रोंमें ज्योति बनी रहती है तथा वह यमलोकमें नहीं जाता। भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको हाथी दान करता है, वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त उनके आधे आसनपर विराजमान होता है। ब्राह्मणको घोड़ा देनेवाला भारतवासी मनुष्य वरुणलोकमें आनन्द करता है। ब्राह्मणको उत्तम शिविका—पालकी प्रदान करनेवाला विष्णुलोकमें जाता है। जो ब्राह्मणको पंखा तथा सफेद चँवर अर्पण करता है, वह वायुलोकमें सम्मान पाता है। जो भारतवर्षमें ब्राह्मणको धानका पर्वत देता है, वह धानके दानोंके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। दाता और प्रतिगृहीता दोनों ही वैकुण्ठलोकमें चले जाते हैं।

जो भारतवर्षमें निरन्तर भगवान् श्रीहरिके नामका कीर्तन करता है, उस चिरञ्जीवी मनुष्यको देखते ही मृत्यु भाग जाती है। भारतवर्षमें जो विद्वान् मनुष्य पूर्णिमाको रातभर दोलोत्सव मनानेका प्रबन्ध करता है, वह जीवन्मुक्त है। इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वह भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त होता है। उत्तराफाल्गुनीमें उत्सव मनानेसे इससे दुगुना फल मिलता है। जो भारतवर्षमें ब्राह्मणको तिलदान करता है, वह तिलके बराबर वर्षोंतक विष्णुधाममें सम्मान पाता है। उसके बाद उत्तम योनिमें जन्म पाकर चिरजीवी हो सुख भोगता है। ताँबेके पात्रमें तिल रखकर दान करनेसे दूना फल मिलता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको फलयुक्त वृक्ष प्रदान करता है, वह फलके बराबर वर्षोंतक इन्द्रलोकमें सम्मान पाता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह सुयोग्य पुत्र प्राप्त करता है। फलवाले वृक्षोंके दानकी महिमा इससे हजारगुना अधिक बतायी

*अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति। नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥
(प्रकृतिखण्ड २७। ३)

गयी है। अथवा ब्राह्मणको केवल फलका भी दान करनेवाला पुरुष दीर्घकालतक स्वर्गमें वास करके पुनः भारतवर्षमें जन्म पाता है।

भारतवर्षमें रहनेवाला जो पुरुष अनेक द्रव्योंसे सम्पन्न तथा भाँति-भाँतिके धान्योंसे भरे-पूरे विशाल भवन ब्राह्मणको दान करता है, वह उसके फलस्वरूप दीर्घकालतक कुबेरके लोकमें वास पाता है। तत्पश्चात् उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह महान् धनवान् होता है। साध्वि! हरी-भरी खेतीसे युक्त सुन्दर भूमि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करनेवाला पुरुष निश्चयपूर्वक वैकुण्ठधाममें प्रतिष्ठित होता है। जो मानव उत्तम गोशाला तथा गाँव ब्राह्मणको दान करता है, उसकी वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा होती है। फिर, जहाँकी उत्तम प्रजाएँ हों, जहाँकी भूमि पकी हुई खेतियोंसे लहलहा रही हो, अनेक प्रकारकी पुष्करिणियोंसे संयुक्त हो तथा फलवाले वृक्ष और लताएँ जिसकी शोभा बढ़ा रही हों, ऐसा श्रेष्ठ नगर जो पुरुष भारतवर्षमें ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत लंबे समयपर्यन्त वैकुण्ठधाममें सुप्रतिष्ठित होता है। फिर भारतवर्षमें उत्तम जन्म पाकर राजेश्वर होता है। उसे लाखों नगरोंका प्रभुत्व प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। निश्चितरूपसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य भूमण्डलपर उसके पास विराजमान रहते हैं।

अत्यन्त उत्तम अथवा मध्यम श्रेणीका भी नगर प्रजाओंसे सम्पन्न हो, वापी, तड़ाग तथा भाँति-भाँतिके वृक्ष जिसकी शोभा बढ़ाते हों, ऐसे सौ नगर ब्राह्मणको दान करनेवाला पुण्यात्मा वैकुण्ठलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है। जैसे इन्द्र सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें शोभा पाते हैं, वैसे ही भूमण्डलपर उस पुरुषकी शोभा होती है। दीर्घ कालतक पृथ्वी उसका साथ नहीं छोड़ती। वह महान् सम्राट् होता है। अपना सम्पूर्ण अधिकार ब्राह्मणको देनेवाला पुरुष चौगुने फलका भागी होता है; इसमें संशय नहीं है। पतिव्रते! जो पुरुष ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका दान करता है, उसे निश्चितरूपसे सौगुने फल प्राप्त होते हैं। जो सातों द्वीपोंकी पृथ्वीका दान करनेवाले, सम्पूर्ण तीर्थोंमें निवास करनेवाले, समस्त तपस्याओंमें संलग्न, सम्पूर्ण उपवास-व्रतके पालक, सर्वस्व दान करनेवाले तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंके पारङ्गत तथा श्रीहरिके भक्त हैं, उन्हें पुनः जगत्में जन्म धारण करना नहीं पड़ता। उनके सामने असंख्य ब्रह्माओंका पतन हो जाता है, परंतु वे श्रीहरिके गोलोक या वैकुण्ठधाममें निवास करते रहते हैं। विष्णु-मन्त्रकी उपासना करनेवाले पुरुष अपने मानवशरीरका त्याग करनेके पश्चात् जन्म, मृत्यु एवं जरासे रहित दिव्य रूप धारण करके श्रीहरिका सारूप्य पाकर उनकी सेवामें संलग्न हो जाते हैं। देवता, सिद्ध तथा अखिल विश्व—ये सब-के-सब समयानुसार नष्ट हो जाते हैं, किंतु श्रीकृष्णभक्तोंका कभी नाश नहीं होता। जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था उनके निकट नहीं आ सकती।

जो पुरुष कार्तिकमासमें श्रीहरिको तुलसी अर्पण करता है, वह पत्र-संख्याके बराबर युगोंतक भगवान्‌के धाममें विराजमान होता है। फिर उत्तम कुलमें उसका जन्म होता और निश्चितरूपसे भगवान्‌के प्रति उसके मनमें भक्ति उत्पन्न होती है, वह भारतमें सुखी एवं चिरञ्जीवी होता है। जो कार्तिकमें श्रीहरिको घीका दीप देता है, वह जितने पल दीपक जलता है, उतने वर्षोंतक हरिधाममें आनन्द भोगता है। फिर अपनी योनिमें आकर विष्णुभक्ति पाता है; महाधनवान् नेत्रकी ज्योतिसे युक्त तथा दीप्तिमान् होता है। जो पुरुष माघमें अरुणोदयके समय प्रयागकी गङ्गामें स्नान करता है, उसे दीर्घकालतक भगवान् श्रीहरिके मन्दिरमें आनन्द लाभ करनेका सुअवसर मिलता है। फिर वह उत्तम योनिमें आकर भगवान् श्रीहरिकी भक्ति एवं मन्त्र पाता है; भारतमें

जितेन्द्रियशिरोमणि होता है। पुनः यथासमय मानव-शरीरको त्यागकर 'भगवद्धाम' में जाता है। वहाँसे पुनः पृथ्वीतलपर आनेकी स्थिति उसके सामने नहीं आती। भगवान्‌का सारूप्य प्राप्तकर वह उन्हींकी सेवामें सदा लगा रहता है। गङ्गामें सर्वदा स्नान करनेवाला पुरुष सूर्यकी भाँति भूमण्डलपर पवित्र माना जाता है। उसे पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है, यह निश्चित है। उसकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। वह वैकुण्ठलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है। उस तेजस्वी पुरुषको जीवन्मुक्त कहना चाहिये। सम्पूर्ण तपस्वी उसका आदर करते हैं। जो पुरुष मीन और कर्कके मध्यवर्तीकालमें भारतवर्षमें सुवासित जलका दान करता है, वह वैकुण्ठमें आनन्द भोगता रहता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर रूपवान्, सुखी, शिवभक्त, तेजस्वी तथा वेद और वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् होता है। वैशाखमासमें ब्राह्मणको सत्तू दान करनेवाला पुरुष सत्तूकणके बराबर वर्षोंतक विष्णुमन्दिरमें प्रतिष्ठित होता है। भारतवर्षमें रहनेवाला जो प्राणी श्रीकृष्णजन्माष्टमीका व्रत करता है, वह सौ जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। वह दीर्घकालतक वैकुण्ठलोकमें आनन्द भोगता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म लेनेपर उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति भक्ति उत्पन्न हो जाती है—यह निश्चित है। इस भारतवर्षमें ही शिवरात्रिका व्रत करनेवाला पुरुष दीर्घकालतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो शिवरात्रिके दिन भगवान् शंकरको बिल्वपत्र चढ़ाता है, वह पत्र-संख्याके बराबर युगोंतक कैलासमें सुखपूर्वक वास करता है। पुनः श्रेष्ठ योनिमें जन्म लेकर भगवान् शिवका परम भक्त होता है। विद्या, पुत्र, सम्पत्ति, प्रजा और भूमि—ये सभी उसके लिये सुलभ रहते हैं।

जो व्रती पुरुष चैत्र अथवा माघमासमें शंकरकी पूजा करता है तथा बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन भक्तिपूर्वक नृत्य करनेमें तत्पर रहता है, वह चाहे एक मास, आधा मास, दस दिन, सात दिन अथवा दो ही दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे दिनकी संख्याके बराबर युगोंतक भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है।

साध्वि! जो मनुष्य भारतमें रामनवमीका व्रत करता है, वह सात मन्वन्तरोंतक विष्णुधाममें आनन्दका अनुभव करता है, फिर अपनी योनिमें आकर रामभक्ति पाता और जितेन्द्रियशिरोमणि होता है। जो पुरुष भगवतीकी शरत्कालीन महापूजा करता है; साथ ही नृत्य, गीत तथा वाद्य आदिके द्वारा नाना प्रकारके उत्सव मनाता है, वह पुरुष भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फिर श्रेष्ठ योनिमें जन्म पाकर वह निर्मल बुद्धि पाता है। अतुल सम्पत्ति, पुत्र-पौत्रोंकी अभिवृद्धि, महान् प्रभाव तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन—ये सभी उसे प्राप्त हो जाते हैं। वह राजराजेश्वर भी होता है। इसमें कोई संशय नहीं है। जो पुरुष पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें रहकर भाद्रपदमासकी शुक्लाष्टमीके अवसरपर एक पक्षतक नित्य भक्ति-भावसे महालक्ष्मीकी उपासना करता है, सोलह प्रकारके उत्तम उपचारोंसे भलीभाँति पूजा करनेमें संलग्न रहता है, वह वैकुण्ठधाममें रहनेका अधिकारी होता है।

भारतवर्षमें कार्तिककी पूर्णिमाके अवसरपर सैकड़ों गोप एवं गोपियोंको साथ लेकर रासमण्डल-सम्बन्धी उत्सव मनानेकी बड़ी महिमा है। उस दिन पाषाणमयी प्रतिमामें सोलह प्रकारके उपचारोंद्वारा श्रीराधा-कृष्णकी पूजा करे। इस पुण्यमय कार्यको सम्पन्न करनेवाला पुरुष गोलोकमें वास करता है और भगवान् श्रीकृष्णका परम भक्त बनता है। उसकी भक्ति क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होती है। वह सदा भगवान् श्रीहरिका मन्त्र जपता है। वहाँ

भगवान् श्रीकृष्णके समान रूप प्राप्त करके उनका प्रमुख पार्षद होता है। जरा और मृत्युको जीतनेवाले उस पुरुषका पुनः वहाँसे पतन नहीं होता।

जो पुरुष शुक्ल अथवा कृष्ण-पक्षकी एकादशीका व्रत करता है, उसे वैकुण्ठमें रहनेकी सुविधा प्राप्त होती है। फिर भारतवर्षमें आकर वह भगवान् श्रीकृष्णका अनन्य उपासक होता है। क्रमशः भगवान् श्रीहरिके प्रति उसकी भक्ति सुदृढ़ होती जाती है। शरीर त्यागनेके बाद पुनः गोलोकमें जाकर वह भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करके उनका पार्षद बन जाता है। पुनः उसका संसारमें आना नहीं होता। जो पुरुष भाद्रपदमासकी शुक्ल द्वादशी तिथिके दिन इन्द्रकी पूजा करता है, वह सम्मानित होता है। जो प्राणी भारतवर्षमें रहकर रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यकी पूजा करके हविष्यान्न भोजन करता है, वह सूर्यलोकमें विराजमान होता है। फिर भारतवर्षमें जन्म पाकर आरोग्यवान् और धनाढ्य पुरुष होता है। ज्येष्ठ महीनेकी कृष्ण-चतुर्दशीके दिन जो व्यक्ति भगवती सावित्रीकी पूजा करता है, वह ब्रह्माके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फिर वह पृथ्वीपर आकर श्रीमान् एवं अतुल पराक्रमी पुरुष होता है। साथ ही वह चिरंजीवी, ज्ञानी और वैभव-सम्पन्न होता है। जो मानव माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिके दिन संयमपूर्वक उत्तम भक्तिके साथ षोडशोपचारसे भगवती सरस्वतीकी अर्चना करता है, वह वैकुण्ठधाममें स्थान पाता है। जो भारतवासी व्यक्ति जीवनभर भक्तिके साथ नित्यप्रति ब्राह्मणको गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह वैकुण्ठमें सुख भोगता है। भारतवर्षमें जो प्राणी ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराता है, वह ब्राह्मणकी रोमसंख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो भारतवासी व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता है अथवा दूसरेको कीर्तन करनेके लिये उत्साहित करता है, वह नाम-संख्याके बराबर युगोंतक वैकुण्ठमें विराजमान होता है। यदि नारायणक्षेत्रमें नामोच्चारण किया जाय तो करोड़ोंगुना अधिक फल मिलता है। जो पुरुष नारायणक्षेत्रमें भगवान् श्रीहरिके नामका एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है—यह ध्रुव सत्य है। वह पुनः जन्म न पाकर विष्णुलोकमें विराजमान होता है*। उसे भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हो जाता है। वहाँसे वह फिर गिर नहीं सकता।

जो पुरुष प्रतिदिन पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवलिङ्गकी अर्चा करता है और जीवनभर इस नियमका पालन करता रहता है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है और लंबे समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित रहता है; तत्पश्चात् भारतवर्षमें आकर राजेन्द्रपदको सुशोभित करता है। निरन्तर शालग्रामकी पूजा करके उनका चरणोदक पान करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष अतिदीर्घकालपर्यन्त वैकुण्ठमें विराजमान होता है। उसे दुर्लभ भक्ति सुलभ हो जाती है। संसारमें उसका पुनः आना नहीं होता। जिसके द्वारा सम्पूर्ण तप और व्रतका पालन होता है, वह पुरुष इन सत्कर्मोंके फलस्वरूप वैकुण्ठमें रहनेका अधिकार पाता है। पुनः उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। जो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसे निर्वाणपद मिल जाता है। पुनः संसारमें उसकी उत्पत्ति नहीं होती। भारत-जैसे पुण्यक्षेत्रमें जो अश्वमेधयज्ञ करता है, वह दीर्घकालतक

---

*नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्। लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते॥
(प्रकृतिखण्ड २७। ११०-१११)

इन्द्रके आधे आसनपर विराजमान रहता है। राजसूययज्ञ करनेसे मनुष्यको इससे चौगुना फल मिलता है।

सुन्दरि! सम्पूर्ण यज्ञोंसे भगवान् विष्णुका यज्ञ श्रेष्ठ कहा गया है। ब्रह्माने पूर्वकालमें बड़े समारोहके साथ इस यज्ञका अनुष्ठान किया था। पतिव्रते! उसी यज्ञमें दक्ष प्रजापति और शंकरमें कलह मच गया था। ब्राह्मणोंने क्रोधमें आकर नन्दीको शाप दिया था और नन्दीने ब्राह्मणोंको। यही कारण है कि भगवान् शंकरने दक्षके यज्ञको नष्ट कर डाला। पूर्वकालमें दक्ष, धर्म, कश्यप, शेषनाग, कर्दममुनि, स्वायम्भुवमनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल तथा ध्रुवने विष्णुयज्ञ किया था। उसके अनुष्ठानसे हजारों राजसूययज्ञोंका फल निश्चितरूपसे मिल जाता है। वह पुरुष अवश्य ही अनेक कल्पोंतक जीवन धारण करनेवाला तथा जीवन्मुक्त होता है।

भामिनि! जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, वैष्णवपुरुषोंमें शिव, शास्त्रोंमें वेद, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें गङ्गा, पुण्यात्मा पुरुषोंमें वैष्णव, व्रतोंमें एकादशी, पुष्पोंमें तुलसी, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, पक्षियोंमें गरुड़, स्त्रियोंमें भगवती मूलप्रकृति राधा, आधारोंमें वसुन्धरा, चञ्चल स्वभाववाली इन्द्रियोंमें मन, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, प्रजेश्वरोंमें प्रजापति, वनोंमें वृन्दावन, वर्षोंमें भारतवर्ष, श्रीमानोंमें लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती, पतिव्रताओंमें भगवती दुर्गा और सौभाग्यवती श्रीकृष्णपत्नियोंमें श्रीराधा सर्वोपरि मानी जाती हैं; उसी प्रकार सम्पूर्ण यज्ञोंमें विष्णुयज्ञ श्रेष्ठ माना जाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंका स्नान, अखिल यज्ञोंकी दीक्षा तथा व्रतों एवं तपस्याओं और चारों वेदोंके पाठका तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल अन्तमें यही है कि भगवान् श्रीकृष्णकी मुक्तिदायिनी सेवा सुलभ हो। पुराणों, वेदों और इतिहासमें सर्वत्र श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी अर्चनाको ही सारभूत माना गया है। भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम और गुणोंका कीर्तन, स्तोत्रोंका पाठ, नमस्कार, जप, उनका चरणोदक और नैवेद्य ग्रहण करना—यह नित्यका परम कर्तव्य है। साध्वि! इसे सभी चाहते हैं और सर्वसम्मतिसे यही सिद्ध भी है।

वत्से! अब तुम प्रकृतिसे पर तथा प्राकृत गुणोंसे रहित परब्रह्म श्रीकृष्णकी निरन्तर उपासना करो। मैं तुम्हारे पतिदेवको लौटा देता हूँ। इन्हें लो और सुखपूर्वक अपने घरको जाओ। मनुष्योंका यह मङ्गलमय कर्म-विपाक मैंने तुमको सुना दिया। यह प्रसङ्ग सर्वेप्सित, सर्वसम्मत तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाला है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! धर्मराजके मुखसे उपर्युक्त वर्णन सुनकर सावित्रीकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक पड़े। उसका शरीर पुलकायमान हो गया। उसने पुनः धर्मराजसे कहा।

सावित्री बोली—धर्मराज! वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! मैं किस विधिसे प्रकृतिसे भी पर भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करूँ, यह बताइये। भगवन्! मैं आपके द्वारा मनुष्योंके मनोहर शुभकर्मका विपाक सुन चुकी। अब आप मुझे अशुभकर्म-विपाककी व्याख्या सुनानेकी कृपा करें।

ब्रह्मन्! सती सावित्री इस प्रकार कहकर फिर भक्तिसे अत्यन्त नम्र हो वेदोक्त स्तुतिका पाठ करके धर्मराजकी स्तुति करने लगी।

सावित्रीने कहा—प्राचीनकालकी बात है, महाभाग सूर्यने पुष्करमें तपस्याके द्वारा धर्मकी आराधना की। तब धर्मके अंशभूत जिन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त किया, उन भगवान् धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ। जो सबके साक्षी हैं, जिनकी सम्पूर्ण भूतोंमें समता है, अतएव जिनका नाम शमन है, उन भगवान् शमनको मैं प्रणाम करती हूँ। जो कर्मानुरूप कालके सहयोगसे विश्वके सम्पूर्ण

प्राणियोंका अन्त करते हैं, उन भगवान् कृतान्तको मैं प्रणाम करती हूँ। जो पापीजनोंको शुद्ध करनेके निमित्त दण्डनीयके लिये ही हाथमें दण्ड धारण करते हैं तथा जो समस्त कर्मोंके उपदेशक हैं, उन भगवान् दण्डधरको मेरा प्रणाम है। जो विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंका तथा उनकी समूची आयुका निरन्तर परिगणन करते रहते हैं, जिनकी गतिको रोक देना अत्यन्त कठिन है, उन भगवान् कालको मैं प्रणाम करती हूँ। जो तपस्वी, वैष्णव, धर्मात्मा, संयमी, जितेन्द्रिय और जीवोंके लिये कर्मफल देनेको उद्यत हैं, उन भगवान् यमको मैं प्रणाम करती हूँ। जो अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, सर्वज्ञ, पुण्यात्मा पुरुषोंके मित्र तथा पापियोंके लिये कष्टप्रद हैं, उन 'पुण्यमित्र' नामसे प्रसिद्ध भगवान् धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ। जिनका जन्म ब्रह्माजीके वंशमें हुआ है तथा जो ब्रह्मतेजसे सदा प्रज्वलित रहते हैं एवं जिनके द्वारा परब्रह्मका सतत ध्यान होता रहता है, उन ब्रह्मवंशी भगवान् धर्मराजको मेरा प्रणाम है।*

मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके सावित्रीने धर्मराजको प्रणाम किया। तब धर्मराजने सावित्रीको विष्णु-भजन तथा कर्मके विपाकका प्रसङ्ग सुनाया। जो मनुष्य प्रातः उठकर निरन्तर इस 'यमाष्टक' का पाठ करता है, उसे यमराजसे भय नहीं होता और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि महान् पापी व्यक्ति भी भक्तिसे सम्पन्न होकर निरन्तर इसका पाठ करता है तो यमराज अपने कायव्यूहसे निश्चित ही उसकी शुद्धि कर देते हैं। (अध्याय २७-२८)

नरककुण्डों और उनमें जानेवाले पापियों तथा पापोंका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! रविनन्दन धर्मराजने सावित्रीको विधिपूर्वक विष्णुका महामन्त्र देकर 'अशुभकर्मका विपाक' कहना आरम्भ किया।

धर्मराजने कहा—पतिव्रते! मानव शुभकर्मके विपाकसे नरकमें नहीं जा सकता। नरकमें जानेमें कारण है—अशुभकर्मका विपाक। अतएव अब मैं अशुभकर्मका विपाक बतलाता हूँ, सुनो। नाना प्रकारके स्वर्ग हैं। प्राणी अपने-अपने कर्मोंके प्रभावसे उन स्वर्गोंमें जाते हैं। नरकोंमें जाना कोई मनुष्य नहीं चाहते, परंतु अशुभकर्म-विपाक उन्हें नरकमें जानेके लिये विवश कर देते हैं। नरकोंके नाना प्रकारके कुण्ड हैं। विभिन्न पुराणोंके भेदसे इनके नामोंके भी भेद हो गये हैं। ये सभी कुण्ड बड़े ही विस्तृत हैं। पापियोंको दुःखका भोग कराना ही इन कुण्डोंका प्रयोजन है। वत्से! ये भयंकर कुण्ड अत्यन्त भयावह तथा कुत्सित हैं। इनमें छियासी कुण्ड तो प्रसिद्ध हैं,

---

*तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा। धर्मांशं यं सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः। अतो यन्नाम शमन इति तं प्रणमाम्यहम्॥
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्। कर्मानुरूपकालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्॥
बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे। नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वकर्मणाम्॥
विश्वं यः कलयत्येव सर्वायुश्चापि सन्ततम्। अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम्॥
तपस्वी वैष्णवो धर्मी संयमी संजितेन्द्रियः। जीविनां कर्मफलदं तं यमं प्रणमाम्यहम्॥
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्। पापिनां क्लेशदो यश्च पुण्यमित्रं नमाम्यहम्॥
यज्जन्म ब्रह्मणो वंशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मवंशं नमाम्यहम्॥
(प्रकृतिखण्ड २८। ८—१५)

नारदजीने पूछा—मुने! दक्षिणाहीन कर्मके फलको कौन भोगता है? साथ ही यज्ञपुरुषने भगवती दक्षिणाकी किस प्रकार पूजा की थी; यह भी बतलाइये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! दक्षिणाहीन कर्ममें फल ही कैसे लग सकता है; क्योंकि फल प्रसव करनेकी योग्यता तो दक्षिणावाले कर्ममें ही है। मुने! बिना दक्षिणाका कर्म तो बलिके पेटमें चला जाता है। पूर्वसमयमें भगवान् वामन बलिके लिये आहाररूपमें इसे अर्पण कर चुके हैं। नारद! अश्रोत्रिय और श्रद्धाहीन व्यक्तिके द्वारा श्राद्धमें दी हुई वस्तुको बलि भोजनरूपसे प्राप्त करते हैं। शूद्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणोंके पूजासम्बन्धी द्रव्य, निषिद्ध एवं आचरणहीन ब्राह्मणोंद्वारा किया हुआ पूजन तथा गुरुमें भक्ति न रखनेवाले पुरुषका कर्म—ये सब बलिके आहार हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

मुने! भगवती दक्षिणाके ध्यान, स्तोत्र और पूजाकी विधिके क्रम कण्वशाखामें वर्णित हैं। वह सब मैं कहता हूँ, सुनो।

यज्ञपुरुषने कहा—महाभागे! तुम पूर्वसमयमें गोलोककी एक गोपी थी। गोपियोंमें तुम्हारा प्रमुख स्थान था। राधाके समान ही तुम उनकी सखी थीं। भगवान् श्रीकृष्ण तुमसे प्रेम करते थे। कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। कुछ कार्यान्तर उपस्थित हो जानेके कारण तुम भगवान् श्रीकृष्णके दक्षिण कंधेसे प्रकट हुई थीं। अतएव तुम्हारा नाम 'दक्षिणा' पड़ गया। शोभने! तुम इससे पहले परम शीलवती होनेके कारण 'सुशीला' कहलाती थीं। तुम ऐसी सुयोग्या देवी श्रीराधाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर दक्षिणा नामसे सम्पन्न हो मुझे सौभाग्यवश प्राप्त हुई हो। सुभगे! तुम मुझे अपना स्वामी बनानेकी कृपा करो! तुम्हीं यज्ञशाली पुरुषोंके कर्मका फल प्रदान करनेवाली आदरणीया देवी हो। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। तुम्हारी अनुपस्थितिमें कर्मियोंका कर्म भी शोभा नहीं पाता। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दिक्पाल प्रभृति सभी देवता तुम्हारे न रहनेसे कर्मोंका फल देनेमें असमर्थ रहते हैं। ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं। शंकरको फलरूप बतलाया गया है। मैं विष्णु स्वयं यज्ञरूपसे प्रकट हूँ। इन सबमें साररूपा तुम्हीं हो। साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण, जो प्राकृत गुणोंसे रहित तथा प्रकृतिसे परे हैं, समस्त फलोंके दाता हैं, परंतु वे श्रीकृष्ण भी तुम्हारे बिना कुछ करनेमें समर्थ नहीं हैं। कान्ते! सदा जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरी शक्ति हो। वरानने! तुम्हारे साथ रहकर ही मैं समस्त कर्मोंमें समर्थ हूँ। ऐसा कहकर यज्ञके अधिष्ठाता देवता दक्षिणाके सामने खड़े हो गये। तब कमलाकी कलास्वरूपा उस देवीने संतुष्ट होकर यज्ञपुरुषका वरण किया। यह भगवती दक्षिणाका स्तोत्र है। जो पुरुष यज्ञके अवसरपर इसका पाठ करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंके फल सुलभ हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। सभी प्रकारके यज्ञोंके आरम्भमें जो पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके वे सभी यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जाते हैं, यह ध्रुव सत्य है।

यह स्तोत्र तो कह दिया, अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि शालग्रामकी मूर्तिमें अथवा कलशपर आवाहन करके भगवती दक्षिणाकी पूजा करे। ध्यान यों करना चाहिये—'भगवती लक्ष्मीके दाहिने कंधेसे प्रकट होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं। सम्पूर्ण यज्ञ-यागादि कर्मोंमें अखिल कर्मोंका फल प्रदान करना इनका सहज गुण है। ये भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं। मैं इनकी आराधना करता हूँ। ऐसी शुभा, शुद्धिदा, शुद्धिरूपा एवं सुशीला नामसे प्रसिद्ध भगवती दक्षिणाकी मैं उपासना करता हूँ।' नारद! इसी मन्त्रसे ध्यान करके विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करे। पाद्य, अर्घ्य आदि सभी इसी वेदोक्त मन्त्रके द्वारा अर्पण करने चाहिये। मन्त्र यह है—'**ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा।**' सुधीजनोंको चाहिये कि सर्वपूजिता इन भगवती दक्षिणाकी अर्चना भक्तिपूर्वक उत्तम विधिके साथ करें।

ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवती दक्षिणाका उपाख्यान कह दिया। यह उपाख्यान सुख, प्रीति एवं सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है। जो पुरुष देवी दक्षिणाके इस चरित्रका सावधान होकर श्रवण करता है, भारतकी भूमिपर किये गये उसके कोई कर्म अङ्गहीन नहीं होते। इसके श्रवणसे पुत्रहीन पुरुष अवश्य ही गुणवान् पुत्र प्राप्त कर लेता है और जो भार्याहीन हो, उसे परम सुशीला सुन्दरी पत्नी सुलभ हो जाती है। वह पत्नी विनीत, प्रियवादिनी एवं पुत्रवती होती है। पतिव्रता, उत्तम व्रतका पालन करनेवाली, शुद्ध आचार-विचार रखनेवाली तथा श्रेष्ठ कुलकी कन्या होती है। विद्याहीन विद्या, धनहीन धन, भूमिहीन भूमि तथा प्रजाहीन मनुष्य श्रवणके प्रभावसे प्रजा प्राप्त कर लेता है। संकट, बन्धुविच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनके कष्टमें पड़ा हुआ पुरुष एक महीनेतक इसका श्रवण करके इन सबसे छूट जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

(अध्याय ४२)

देवी षष्ठीके ध्यान, पूजन, स्तोत्र तथा विशद महिमाका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो! भगवती 'षष्ठी', मङ्गलचण्डिका तथा देवी मनसा—ये देवियाँ मूलप्रकृतिकी कला मानी गयी हैं। मैं अब इनके प्राकट्यका प्रसङ्ग यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण ये 'षष्ठी' देवी कहलाती हैं। बालकोंकी ये अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें 'देवसेना' नामसे ये प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली इन साध्वी देवीको स्वामी कार्तिकेयकी पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त है। वे प्राणोंसे भी बढ़कर इनसे प्रेम करते हैं। बालकोंको दीर्घायु बनाना तथा उनका भरण-पोषण एवं रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है। ये सिद्धियोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे बच्चोंके पास सदा विराजमान रहती हैं। ब्रह्मन्! इनकी पूजा-विधिके साथ ही यह एक उत्तम इतिहास सुनो। पुत्र प्रदान करनेवाला यह परम सुखदायी उपाख्यान धर्मदेवके मुखसे मैंने सुना है।

प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं। उनके पिताका नाम था—स्वायम्भुव मनु। प्रियव्रत योगिराज होनेके कारण विवाह करना नहीं चाहते थे। तपस्यामें उनकी विशेष रुचि

थी। परंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा सत्प्रयत्नके प्रभावसे उन्होंने विवाह कर लिया। मुने! विवाहके बाद सुदीर्घकालतक उन्हें कोई भी संतान नहीं हो सकी। तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया। राजाकी प्रेयसी भार्याका नाम मालिनी था। मुनिने उन्हें चरु प्रदान किया। चरु-भक्षण करनेके पश्चात् रानी मालिनी गर्भवती हो गयीं। तत्पश्चात् सुवर्णके समान प्रतिभावाले एक कुमारकी उत्पत्ति हुई; परंतु सम्पूर्ण अङ्गोंसे सम्पन्न वह कुमार मरा हुआ था। उसकी आँखें उलट चुकी थीं। उसे देखकर समस्त नारियाँ तथा बान्धवोंकी स्त्रियाँ भी रो पड़ीं। पुत्रके असह्य शोकके कारण माताको मूर्च्छा आ गयी।

मुने! राजा प्रियव्रत उस मृत बालकको लेकर श्मशानमें गये। उस एकान्त भूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाने लगे। इतनेमें उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखायी पड़ा। शुद्ध स्फटिकमणिके समान चमकनेवाला वह विमान अमूल्य रत्नोंसे बना था। तेजसे जगमगाते हुए उस विमानकी रेशमी वस्त्रोंसे अनुपम शोभा हो रही थी। अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे वह विभूषित था। पुष्पोंकी मालासे वह सुसज्जित था। उसीपर बैठी हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक परम सुन्दरी देवीको राजा प्रियव्रतने देखा। श्वेत चम्पाके फलके समान उनका उज्ज्वल वर्ण था। सदा सुस्थिर तारुण्यसे शोभा पानेवाली वे देवी मुस्करा रही थीं। उनके मुखपर प्रसन्नता छायी थी। रत्नमय भूषण उनकी छवि बढ़ाये हुए थे। योगशास्त्रमें पारंगत वे देवी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर थीं। ऐसा जान पड़ता था मानो वे मूर्तिमती कृपा ही हों। उन्हें सामने विराजमान देखकर राजाने बालकको भूमिपर रख दिया और बड़े आदरके साथ उनकी पूजा और स्तुति की। नारद! उस समय स्कन्दकी प्रिया देवी षष्ठी अपने तेजसे देदीप्यमान थीं। उनका शान्त विग्रह ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान चमचमा रहा था। उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने पूछा।

राजा प्रियव्रतने पूछा—सुशोभने! कान्ते! सुव्रते! वरारोहे! तुम कौन हो, तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम किसकी कन्या हो? तुम स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं आदरकी पात्र हो।

नारद! जगत्को मङ्गल प्रदान करनेमें प्रवीण तथा देवताओंके रणमें सहायता पहुँचानेवाली वे भगवती 'देवसेना' थीं। पूर्वसमयमें देवता दैत्योंसे ग्रस्त हो चुके थे। इन देवीने स्वयं सेना बनकर देवताओंका पक्ष ले युद्ध किया था। इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये थे। अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया। महाराज प्रियव्रतकी बात सुनकर ये उनसे कहने लगीं।

भगवती देवसेनाने कहा—राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। जगत्पर शासन करनेवाली मुझ देवीका नाम 'देवसेना' है। विधाताने मुझे उत्पन्न करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया है। मैं सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हूँ। स्कन्दकी पतिव्रता भार्या होनेका गौरव मुझे प्राप्त है। भगवती मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण विश्वमें देवी 'षष्ठी' नामसे मेरी प्रसिद्धि है। मेरे प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीन जन प्रिया, दरिद्री धन तथा कर्मशील पुरुष कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति और विपत्ति—ये सब कर्मके अनुसार होते हैं। अपने ही कर्मके प्रभावसे पुरुष अनेक पुत्रोंका पिता होता है और कुछ लोग पुत्रहीन भी होते हैं। किसीको मरा हुआ पुत्र होता है और किसीको दीर्घजीवी—यह कर्मका ही फल है। गुणी, अङ्गहीन, अनेक पत्नियोंका स्वामी, भार्यारहित, रूपवान्, रोगी और धर्मी होनेमें मुख्य कारण अपना कर्म ही है। कर्मके अनुसार ही व्याधि होती है और पुरुष आरोग्यवान् भी हो जाता

है। अतएव राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—यह बात श्रुतिमें कही गयी है।

मुने! इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें ही उसे पुनः जीवित कर दिया। अब राजाने देखा तो सुवर्णके समान प्रतिभावाला वह बालक हँस रहा था। अभी महाराज प्रियव्रत उस बालककी ओर देख ही रहे थे कि देवी देवसेना उस बालकको लेकर आकाशमें जानेको तैयार हो गयीं। ब्रह्मन्! यह देख राजाके कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख गये, उन्होंने पुनः देवीकी स्तुति की। तब संतुष्ट हुई देवीने राजासे कर्मनिर्मित वेदोक्त वचन कहा।

देवीने कहा—तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो। त्रिलोकीमें तुम्हारा शासन चलता है। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो। तब मैं तुम्हें कमलके समान मुखवाला यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। इसका नाम सुव्रत होगा। इसमें सभी गुण और विवेकशक्ति विद्यमान रहेगी। यह भगवान् नारायणका कलावतार तथा प्रधान योगी होगा। इसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ यह बालक सौ अश्वमेध-यज्ञ करेगा। सभी इसका सम्मान करेंगे। उत्तम बलसे सम्पन्न होनेके कारण यह ऐसी शोभा पायेगा, जैसे लाखों हाथियोंमें सिंह। यह धनी, गुणी, शुद्ध, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंका सिद्धरूप होगा। त्रिलोकीमें इसकी कीर्ति फैल जायगी। यह सबको सब सम्पत्ति प्रदान कर सकेगा।

इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवती देवसेनाने उन्हें वह पुत्र दे दिया। राजा प्रियव्रतने पूजाकी सभी बातें स्वीकार कर लीं। यों भगवती देवसेनाने उन्हें उत्तम वर दे स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। राजा भी प्रसन्नमन होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर लौट आये। आकर पुत्रविषयक वृत्तान्त सबसे कह सुनाया। नारद! यह प्रिय वचन सुनकर स्त्री और पुरुष सब-के-सब परम संतुष्ट हो गये। राजाने सर्वत्र पुत्र-प्राप्तिके उपलक्षमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करा दिया। भगवतीकी पूजा की। ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। तबसे प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके अवसरपर भगवती षष्ठीका महोत्सव यत्नपूर्वक मनाया जाने लगा। बालकोंके प्रसवगृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके शुभ समयपर यत्नपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी। सर्वत्र इसका पूरा प्रचार हो गया। स्वयं राजा प्रियव्रत भी पूजा करते थे।

सुव्रत! अब भगवती देवसेनाका ध्यान, पूजन, स्तोत्र कहता हूँ, सुनो। यह प्रसङ्ग कौथुमशाखामें वर्णित है। धर्मदेवके मुखसे सुननेका मुझे अवसर मिला था। मुने! शालग्रामकी प्रतिमा, कलश अथवा वटके मूलभागमें या दीवालपर पुत्तलिका बनाकर प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली शुद्धस्वरूपिणी इन भगवतीकी इस प्रकार पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष इनका इस प्रकार ध्यान करे—'सुन्दर पुत्र, कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली ये देवी जगत्की माता हैं। श्वेत चम्पकके समान इनका

वर्ण है। रत्नमय भूषणोंसे ये अलंकृत हैं। इन परम पवित्रस्वरूपिणी भगवती देवसेनाकी मैं उपासना करता हूँ।' विद्वान् पुरुष यों ध्यान करनेके पश्चात् भगवतीको पुष्पाञ्जलि समर्पण करे। पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रसे इन साध्वी देवीकी पूजा करनेका विधान है। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, धूप, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फलद्वारा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उपचार अर्पण करनेके पूर्व '**ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा**' इस मन्त्रका उच्चारण करना विहित है। पूजक पुरुषको चाहिये कि यथाशक्ति इस अष्टाक्षर महामन्त्रका जप भी करे।

तदनन्तर मनको शान्त करके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेके पश्चात् देवीको प्रणाम करे। फल प्रदान करनेवाला यह उत्तम स्तोत्र सामवेदमें वर्णित है। जो पुरुष देवीके उपर्युक्त अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, उसे अवश्य ही उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। मुनिवर! अब सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र सुनो। नारद! सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाला यह स्तोत्र वेदोंमें गोप्य है।

'देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना एवं भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा, धनदा, सुखदा एवं मोक्षदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली भगवती सिद्धाको नमस्कार है। माया, सिद्धयोगिनी, सारा, शारदा और परादेवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याण-स्वरूपिणी एवं कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामी कार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्धसत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुरेश्वरि! तुम मुझे धन दो, प्रिय पत्नी दो और पुत्र देनेकी कृपा करो। महेश्वरि! तुम मुझे सम्मान दो, विजय दो और मेरे शत्रुओंका संहार कर डालो। धन और यश प्रदान करनेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुपूजिते! तुम भूमि दो, प्रजा दो, विद्या दो तथा कल्याण एवं जय प्रदान करो। तुम षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् महाराज प्रियव्रतने षष्ठीदेवीके प्रभावसे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया। ब्रह्मन्! जो पुरुष भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रको एक वर्षतक श्रवण करता है, वह यदि अपुत्री हो तो दीर्घजीवी सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेता है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करके इनका यह स्तोत्र सुनता है, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जाते हैं। महान् वन्ध्या भी इसके प्रसादसे संतान प्रसव करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेती है। वह भगवती देवसेनाकी कृपासे गुणी, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी होती है। काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसका श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्रवती हो जाती है। यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे उस बालककी व्याधि शान्त हो जाती है। (अध्याय ४३)

भगवती मङ्गलचण्डी और मनसादेवीका उपाख्यान

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मपुत्र नारद! आगम शास्त्रके अनुसार षष्ठीदेवीका चरित्र कह दिया। अब भगवती मङ्गलचण्डीका उपाख्यान सुनो, साथ ही उनकी पूजाका विधान भी। इसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था, वही बता रहा हूँ। यह श्रुतिसम्मत उपाख्यान सम्पूर्ण विद्वानोंको भी अभीष्ट है। 'चण्डी' शब्दका प्रयोग 'दक्षा' (चतुरा)-के अर्थमें होता है और 'मङ्गल' शब्द कल्याणका वाचक है। जो मङ्गल—कल्याण करनेमें दक्ष हो, वह 'मङ्गलचण्डिका' कही जाती है। 'दुर्गा' के अर्थमें चण्डी शब्दका प्रयोग होता है और मङ्गल शब्द भूमिपुत्र मङ्गलके अर्थमें भी आता है। अतः जो मङ्गलकी अभीष्ट देवी हैं, उन देवीको 'मङ्गलचण्डिका' कहा गया है। मनुवंशमें मङ्गल नामक एक राजा थे। सप्तद्वीपवती पृथ्वी उनके शासनमें थी। उन्होंने इन देवीको अभीष्ट देवता मानकर पूजा की थी। इसलिये भी ये 'मङ्गलचण्डी' नामसे विख्यात हुईं। जो मूलप्रकृति भगवती जगदीश्वरी 'दुर्गा' कहलाती हैं, उन्हींका यह रूपान्तर है। ये देवी कृपाकी मूर्ति धारण करके सबके सामने प्रत्यक्ष हुई हैं। स्त्रियोंकी ये इष्टदेवी हैं।

सर्वप्रथम भगवान् शंकरने इन सर्वश्रेष्ठरूपा देवीकी आराधना की। ब्रह्मन्! त्रिपुर नामक दैत्यके भयंकर वधके समयका यह प्रसङ्ग है। भगवान् शंकर बड़े संकटमें पड़ गये थे। दैत्यने रोषमें आकर उनके वाहन विमानको आकाशसे नीचे गिरा दिया था। तब ब्रह्मा और विष्णुने उन्हें प्रेरणा की। उन महानुभावोंका उपदेश मानकर शंकर भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे। वे भी देवी मङ्गलचण्डी ही थीं। केवल रूप बदल लिया था। स्तुति करनेपर वे ही देवी भगवान् शंकरके सामने प्रकट हुईं और उनसे बोलीं—'प्रभो! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। स्वयं सर्वेश भगवान् श्रीहरि ही वृषभका रूप धारण करके तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे। वृषध्वज! मैं युद्ध-शक्तिस्वरूपा बनकर तुम्हारा साथ दूँगी। फिर स्वयं मेरी तथा श्रीहरिकी सहायतासे तुम देवताओंको पदच्युत करनेवाले उस दानवको, जिसने घोर शत्रुता ठान रखी है, मार डालोगे।'

मुनिवर! इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। उसी क्षण उन शक्तिरूपी देवीसे शंकर सम्पन्न हो गये। भगवान् श्रीहरिने एक अस्त्र दे दिया था। अब उसी अस्त्रसे त्रिपुर-वधमें उन्हें सफलता प्राप्त हो गयी। दैत्यके मारे जानेपर सम्पूर्ण देवताओं तथा महर्षियोंने भगवान् शंकरका स्तवन किया। उस समय सभी भक्तिमें सराबोर होकर अत्यन्त नम्र हो गये थे। उसी क्षण भगवान् शंकरके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा और विष्णुने परम संतुष्ट होकर उन्हें शुभ आशीर्वाद और सदुपदेश भी दिया। तब भगवान् शंकर सम्यक् प्रकारसे स्नान करके भक्तिके साथ भगवती मङ्गलचण्डीकी आराधना करने लगे। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, विविध वस्त्र, पुष्प, चन्दन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, बलि, वस्त्र, अलंकार, माला, तीर, पिष्टक, मधु, सुधा तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा भक्तिपूर्वक उन्होंने देवीकी पूजा की। नाच, गान, वाद्य और नाम-कीर्तन भी कराया। तत्पश्चात् माध्यन्दिन शाखामें कहे हुए ध्यान-मन्त्रके द्वारा भगवती मङ्गलचण्डीका भक्तिपूर्वक ध्यान किया। नारद! उन्होंने मूलमन्त्रका उच्चारण करके ही भगवतीको सभी द्रव्य समर्पण किये थे। वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके ऐं क्रूं फट् स्वाहा।'*

* देवीभागवत नवम स्कन्धके ४७वें अध्यायमें भी यह मन्त्र आया है, वहाँ 'ऐं क्रूं'के स्थानमें 'हूं हूं' ऐसा पाठ है।

—इक्कीस अक्षरका यह मन्त्र सुपूजित होनेपर भक्तोंको सम्पूर्ण कामना प्रदान करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप है। दस लाख जप करनेपर इस मन्त्रकी सिद्धि होती है।

ब्रह्मन्! अब ध्यान सुनो। सर्वसम्मत ध्यान वेदप्रणीत है। 'सुस्थिरयौवना भगवती मङ्गलचण्डिका सदा सोलह वर्षकी ही जान पड़ती हैं। ये सम्पूर्ण रूप-गुणसे सम्पन्न, कोमलाङ्गी एवं मनोहारिणी हैं। श्वेत चम्पाके समान इनका गौरवर्ण तथा करोड़ों चन्द्रमाओंके तुल्य इनकी मनोहर कान्ति है। ये अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण किये रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। मल्लिका-पुष्पोंसे समलंकृत केशपाश धारण करती हैं। बिम्बसदृश लाल ओठ, सुन्दर दन्त-पंक्ति तथा शरत्कालके प्रफुल्ल कमलकी भाँति शोभायमान मुखवाली मङ्गलचण्डिकाके प्रसन्न वदनारविन्दपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही है। इनके दोनों नेत्र सुन्दर खिले हुए नीलकमलके समान मनोहर जान पड़ते हैं। सबको सम्पूर्ण सम्पदा प्रदान करनेवाली ये जगदम्बा घोर संसार-सागरसे उबारनेमें जहाजका काम करती हैं। मैं सदा इनका भजन करता हूँ।' मुने! यह तो भगवती मङ्गलचण्डिकाका ध्यान हुआ। ऐसे ही स्तवन भी है, सुनो।

महादेवजीने कहा—जगन्माता भगवती मङ्गलचण्डिके! तुम सम्पूर्ण विपत्तियोंका विध्वंस करनेवाली हो एवं हर्ष तथा मङ्गल प्रदान करनेको सदा प्रस्तुत रहती हो। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। खुले हाथ हर्ष और मङ्गल देनेवाली हर्षमङ्गलचण्डिके! तुम शुभा, मङ्गलदक्षा, शुभमङ्गलचण्डिका, मङ्गला, मङ्गलार्हा तथा सर्वमङ्गलमङ्गला कहलाती हो। देवि! साधुपुरुषोंको मङ्गल प्रदान करना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। तुम सबके लिये मङ्गलका आश्रय हो। देवि! तुम मङ्गलग्रहकी इष्टदेवी हो। मङ्गलके दिन तुम्हारी पूजा होनी चाहिये। मनुवंशमें उत्पन्न राजा मङ्गलकी पूजनीया देवी हो। मङ्गलाधिष्ठात्री देवि! तुम मङ्गलोंके लिये भी मङ्गल हो। जगत्के समस्त मङ्गल तुमपर आश्रित हैं। तुम सबको मोक्षमय मङ्गल प्रदान करती हो। मङ्गलको सुपूजित होनेपर मङ्गलमय सुख प्रदान करनेवाली देवि! तुम संसारकी सारभूता मङ्गलाधारा तथा समस्त कर्मोंसे परे हो।'

इस स्तोत्रसे स्तुति करके भगवान् शंकरने देवी मङ्गलचण्डिकाकी उपासना की। वे प्रति मङ्गलवारको उनका पूजन करके चले जाते हैं। यों ये भगवती सर्वमङ्गला सर्वप्रथम भगवान् शंकरसे पूजित हुईं। उनके दूसरे उपासक मङ्गल ग्रह हैं। तीसरी बार राजा मङ्गलने तथा चौथी बार मङ्गलके दिन कुछ सुन्दरी स्त्रियोंने इन देवीकी पूजा की। पाँचवीं बार मङ्गलकी कामना रखनेवाले बहुसंख्यक मनुष्योंने मङ्गलचण्डिकाका पूजन किया। फिर तो विश्वेश शंकरसे सुपूजित ये देवी प्रत्येक विश्वमें सदा पूजित होने लगीं। मुने! इसके बाद देवता, मुनि, मनु और मानव—सभी सर्वत्र इन परमेश्वरीकी पूजा करने लगे।

जो पुरुष मनको एकाग्र करके भगवती मङ्गलचण्डिकाके इस मङ्गलमय स्तोत्रका श्रवण करता है, उसे सदा मङ्गल प्राप्त होता है। अमङ्गल उसके पास नहीं आ सकता। उसके पुत्र और पौत्रोंमें वृद्धि होती है तथा उसे प्रतिदिन मङ्गल ही दृष्टिगोचर होता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! आगमोंके अनुसार देवी षष्ठी और मङ्गलचण्डिकाका उपाख्यान कह चुका। अब मनसादेवीका चरित्र, जो धर्मके मुखसे मैं सुन चुका हूँ, तुमसे कहता हूँ, सुनो। ये भगवती कश्यपजीकी मानसी कन्या हैं तथा मनसे उद्दीप्त होती हैं, इसलिये 'मनसा'देवीके नामसे विख्यात हैं। आत्मामें रमण करनेवाली इन सिद्धयोगिनी वैष्णवीदेवीने तीन युगोंतक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तपस्या की है।

गोपीपति परम प्रभु उन परमेश्वरने इनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर इनका 'जरत्कारु' नाम रख दिया। साथ ही, उन कृपानिधिने कृपापूर्वक इनकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण कर दीं, इनकी पूजाका प्रचार किया और स्वयं भी इनकी पूजा की। स्वर्गमें, ब्रह्मलोकमें, भूमण्डलमें और पातालमें—सर्वत्र इनकी पूजा प्रचलित हुई। सम्पूर्ण जगत्में ये अत्यधिक गौरवर्णा, सुन्दरी और मनोहारिणी हैं; अतएव ये साध्वी देवी 'जगद्गौरी' के नामसे विख्यात होकर सम्मान प्राप्त करती हैं। भगवान् शिवसे शिक्षा प्राप्त करनेके कारण ये देवी 'शैवी' कहलाती हैं। भगवान् विष्णुकी ये अनन्य उपासिका हैं। अतएव लोग इन्हें 'वैष्णवी' कहते हैं। राजा जनमेजयके यज्ञमें इन्हींके सत्प्रयत्नसे नागोंके प्राणोंकी रक्षा हुई थी, अतः इनका नाम 'नागेश्वरी' और 'नागभगिनी' पड़ गया। विषका संहार करनेमें परम समर्थ होनेसे इनका एक नाम 'विषहरी' है। इन्हें भगवान् शंकरसे योगसिद्धि प्राप्त हुई थी। अतः ये 'सिद्धयोगिनी' कहलाने लगीं। इन्होंने शंकरसे महान् गोपनीय ज्ञान एवं मृतसंजीवनी नामक उत्तम विद्या प्राप्त की है, इस कारण विद्वान् पुरुष इन्हें 'महाज्ञानयुता' कहते हैं। ये परम तपस्विनी देवी मुनिवर आस्तीककी माता हैं। अतः ये देवी जगत्में सुप्रतिष्ठित होकर 'आस्तीकमाता' नामसे विख्यात हुई हैं। जगत्पूज्य योगी महात्मा मुनिवर जरत्कारुकी प्यारी पत्नी होनेके कारण ये 'जरत्कारुप्रिया' नामसे विख्यात हुईं। जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी और महाज्ञानयुता—इन बारह नामोंसे विश्व इनकी पूजा करता है। जो पुरुष पूजाके समय इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजको भी सर्पका भय नहीं हो सकता।* जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें बहुतेरे नाग भरे हों, नागोंसे युक्त होनेके कारण जो महान् दारुण स्थान बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित हो, वहाँ भी पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करके सर्पभयसे मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। जो नित्य इसका पाठ करता है, उसे देखकर नाग भाग जाते हैं। दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। जिसे यह स्तोत्र सिद्ध हो गया, वह विष-भक्षण करने तथा नागोंको भूषण बनाकर नागपर सवारी करनेमें भी समर्थ हो सकता है। वह नागासन, नागतल्प तथा महान् सिद्ध हो जाता है।

मुनिवर! अब मैं देवी मनसाकी पूजाका विधान तथा सामवेदोक्त ध्यान बतलाता हूँ, सुनो। 'भगवती मनसा श्वेतचम्पक-पुष्पके समान वर्णवाली हैं। इनका विग्रह रत्नमय भूषणोंसे विभूषित है। अग्निशुद्ध वस्त्र इनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इन्होंने सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। महान् ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें भी ये प्रमुख मानी जाती हैं। ये सिद्धपुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सिद्धि प्रदान करनेवाली तथा सिद्धा हैं; मैं इन भगवती मनसाकी उपासना करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा गन्ध, पुष्प और अनुलेपनसे देवीकी पूजा होती है। सभी उपचार मूलमन्त्रको पढ़कर अर्पण करने चाहिये। मुने! इनके मूलमन्त्रका नाम है—'मूल कल्पतरु'—यह सुसिद्ध मन्त्र है। इसमें बारह

---

* जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी। वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा॥
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च। महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता॥
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत्। तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च॥
(प्रकृतिखण्ड ४५। १५—१७)

अक्षर हैं। इसका वर्णन वेदमें है। यह भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाला है। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा।**' पाँच लाख मन्त्र जप करनेपर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जिसे इस मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त हो गयी, वह धरातलपर सिद्ध है। उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है। उस पुरुषकी धन्वन्तरिसे तुलना की जा सकती है।

ब्रह्मन्! जो पुरुष आषाढ़की संक्रान्तिके दिन 'गुडा' (कपास या सेंहुड़) नामक वृक्षकी शाखापर यत्नपूर्वक इन भगवती मनसाका आवाहन करके भक्तिभावके साथ पूजा करता है तथा मनसापञ्चमीको उन देवीके लिये बलि अर्पण करता है, वह अवश्य ही धनवान्, पुत्रवान् और कीर्तिमान् होता है। महाभाग! पूजाका विधान कह चुका। अब धर्मदेवके मुखसे जैसा कुछ सुना है, वह उपाख्यान कहता हूँ, सुनो।

प्राचीन समयकी बात है। भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गये थे। नाग जिन्हें काट खाते, वे जीवित नहीं बचते थे। यह देख-सुनकर कश्यपजी भी भयभीत हो गये; अतः ब्रह्माजीके अनुरोधसे उन्होंने सर्पभयनिवारक मन्त्रोंकी रचना की। ब्रह्माजीके उपदेशसे वेदबीजके अनुसार मन्त्रोंकी रचना हुई। साथ ही ब्रह्माजीने अपने मनसे उत्पन्न करके इन देवीको इस मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी बना दिया। तपस्या तथा मनसे प्रकट होनेके कारण ये देवी 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं। कुमारी अवस्थामें ही ये भगवान् शंकरके धाममें चली गयीं। कैलासमें पहुँचकर इन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान् चन्द्रशेखरकी पूजा करके उनकी स्तुति की। मुनिकुमारी मनसाने देवताओंके वर्षसे हजार वर्षोंतक भगवान् शंकरकी उपासना की। तदनन्तर भगवान् आशुतोष इनपर प्रसन्न हो गये। मुने! भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर इन्हें महान् ज्ञान प्रदान किया। सामवेदका अध्ययन कराया और भगवान् श्रीकृष्णके कल्पवृक्षरूप अष्टाक्षर-मन्त्रका उपदेश किया।

मन्त्रका रूप ऐसा है—लक्ष्मीबीज, मायाबीज और कामबीजका पूर्वमें प्रयोग करके कृष्ण शब्दके अन्तमें '**ङे**' विभक्ति लगाकर **नमः** पद जोड़ दिया जाता है (**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः**)। भगवान् शंकरकी कृपासे जब मुनिकुमारी मनसाको उक्त मन्त्रके साथ त्रैलोक्यमङ्गल नामक कवच, पूजनका क्रम, सर्वमान्य स्तवन, भुवनपावन ध्यान, सर्वसम्मत वेदोक्त पुरश्चरणका नियम तथा मृत्युञ्जय-ज्ञान प्राप्त हो गया, तब वह साध्वी उनसे आज्ञा ले पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करनेके लिये चली गयी। वहाँ जाकर उसने परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तीन युगोंतक उपासना की। इसके बाद उसे तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्णने सामने प्रकट होकर उसे दर्शन दिये। उस समय कृपानिधि श्रीकृष्णने उस कृशाङ्गी बालापर अपनी कृपाकी दृष्टि डाली। उन्होंने उसका दूसरोंसे पूजन कराया और स्वयं भी उसकी पूजा की; साथ ही वर दिया कि 'देवि! तुम जगत्में पूजा प्राप्त करो।' इस प्रकार कल्याणी मनसाको वर प्रदान करके भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इस तरह इस मनसादेवीकी सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने पूजा की। तत्पश्चात् शंकर, कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिसे त्रिलोकीमें श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाली यह देवी सुपूजित हुई। फिर कश्यपजीने जरत्कारु मुनिके साथ उसका विवाह कर दिया। वे मुनि महान् योगी थे। विवाह करनेके पश्चात् तपस्या करनेमें संलग्न हो गये। वे एक दिन पुष्करक्षेत्रमें उस वटवृक्षके नीचे देवी जरत्कारुकी जाँघपर लेट गये और उन्हें नींद आ गयी। इतनेमें सायंकाल होनेको आया। सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परम साध्वी एवं पतिव्रता थी। उसने मनमें विचार किया—'द्विजोंके लिये

नित्य सायंकाल संध्या करनेका विधान है। यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें पाप लग जायगा; क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रातः और सायंकालकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता, वह अपवित्र होकर पापका भागी होता है।' यों विचार करके उस परम सुन्दरी मनसाने पतिदेवको जगा दिया। मुने! मुनिवर जरत्कारु जगनेपर क्रोधसे भर गये।

मुनिने कहा—साध्वि! मैं सुखपूर्वक सो रहा था; तुमने मेरी निद्रा क्यों भङ्ग कर दी? जो स्त्री अपने स्वामीका अपकार करती है, उसके व्रत, तपस्या, उपवास और दान आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। स्वामीका अप्रिय करनेवाली स्त्री किसी भी सत्कर्मका फल नहीं प्राप्त कर सकती। जिसने अपने पतिकी पूजा की, उससे मानो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सुपूजित हो गये। पतिव्रताओंके व्रतके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरि पतिके रूपमें विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और देवपूजन—ये सब-के-सब स्वामीकी सेवाकी सोलहवीं कलाकी भी तुलना नहीं कर सकते। जो स्त्री भारतवर्ष-जैसे पुण्यक्षेत्रमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने स्वामीके साथ वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है। साध्वि! जो असत्कुलमें उत्पन्न स्त्री अपने स्वामीके प्रतिकूल आचरण करती तथा उसके प्रति कटु वचन बोलती है, वह कुम्भीपाक नरकमें सूर्य और चन्द्रमाकी आयुपर्यन्त वास करती है। तदनन्तर चाण्डालके घरमें उसका जन्म होता है और पति एवं पुत्रके सुखसे वह वञ्चित रहती है। यों कहकर वे चुप हो गये। तब साध्वी मनसा भयसे काँपने लगी। उसने पतिदेवसे कहा।

साध्वी मनसाने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग! आपकी संध्योपासनाका लोप न हो जाय, इसी भयसे मैंने आपको जगा दिया है—यह मेरा दोष अवश्य है।

इस प्रकार कहकर देवी मनसा भक्तिपूर्वक अपने स्वामी जरत्कारु मुनिके चरण-कमलोंमें पड़ गयी। उस समय रोषके आवेशमें आकर मुनि सूर्यको भी शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। नारद! उन्हें देखकर स्वयं भगवान् सूर्य संध्यादेवीको साथ लेकर वहाँ आये और भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिवर जरत्कारुसे सम्यक् प्रकारसे यथार्थ बात कहने लगे।

भगवान् सूर्यने कहा—भगवन्! आप परम शक्तिशाली ब्राह्मण हैं। संध्याका समय देखकर धर्मलोप हो जानेके भयसे इस साध्वीने आपको जगा दिया। मुने! विप्रवर! मैं आपकी शरणमें उपस्थित हूँ। मुझे शाप देना आपके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मणोंका हृदय सदा नवनीतके समान कोमल होता है। ब्राह्मण चाहें तो पुनः सृष्टि कर सकते हैं; इनसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई है ही नहीं। ब्रह्मज्योति ब्राह्मणके द्वारा निरन्तर सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना होती है।

सूर्यके उपर्युक्त वचन सुनकर विप्रवर जरत्कारु प्रसन्न हो गये। उनसे आशीर्वाद लेकर सूर्य अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उन ब्राह्मणदेवताने देवी मनसाका त्याग कर दिया। उस समय देवीके शोककी सीमा नहीं रही। दुःखके कारण उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा था। वे रो रही थीं। उस विपत्तिके अवसरपर भयसे व्याकुल होकर उस देवीने अपने गुरुदेव शंकर, इष्टदेवता ब्रह्मा और श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया। देवी मनसाके चिन्तन करनेपर तुरंत गोपीश भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यप मुनि वहाँ आ गये। प्रकृतिसे परे निर्गुण परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण मुनिवर जरत्कारुके अभीष्ट देवता थे। उनके दर्शन पाकर परम भक्तिके साथ मुनि बार-बार प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। फिर भगवान् शंकर,

ब्रह्मा और कश्यपको भी नमस्कार किया। यों पूछा—'महाभाग देवताओ! आप लोगोंका यहाँ कैसे पधारना हुआ है?'

मुनिवर जरत्कारुकी बात सुनकर ब्रह्माजीने समयोचित बातें कहीं। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके उन्होंने मुनिको उत्तर दिया—'मुने! तुम्हारी यह धर्मपत्नी मनसा परम साध्वी एवं धर्ममें आस्था रखनेवाली है। यदि तुम इसे त्यागना चाहते हो तो पहले इसको किसी संतानकी जननी बना दो, जिससे यह अपने धर्मका पालन कर सके। संतान हो जानेके पश्चात् स्त्रीको त्यागा जा सकता है। जो पुरुष पुत्रोत्पत्ति कराये बिना ही प्रिय पत्नीका त्याग कर देता है, उसका पुण्य चलनीसे बह जानेवाले जलकी भाँति साथ छोड़ देता है।'

नारद! ब्रह्माजीकी बात सुनकर मुनिवर जरत्कारुने मन्त्र पढ़कर योगबलका सहारा ले देवी मनसाकी नाभिका स्पर्श कर दिया और उससे कहा।

मुनिवर जरत्कारुने कहा—मनसे! इस गर्भसे तुम्हें पुत्र होगा। वह पुत्र जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्रह्मज्ञानी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणी, वेदवेत्ताओं, ज्ञानियों और योगियोंमें प्रमुख, विष्णुभक्त तथा अपने कुलका उद्धारक होगा। ऐसे सुयोग्य पुत्रके उत्पन्न होनेमात्रसे पितर आनन्दमें भरकर नाचने लगते हैं। जो पातिव्रतधर्मका पालन करती है, प्रिय बोलती है और सुशीला है, वह 'प्रिया' है। जो धर्ममें श्रद्धा रखती है, पुत्र उत्पन्न करती है तथा कुलकी रक्षा करती है, उसीको 'कुलीन स्त्री' कहते हैं। जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न करता एवं अभीष्ट सुख देनेमें तत्पर रहता है, वही 'बन्धु' है। यदि भगवान् श्रीहरिके मार्गका प्रदर्शक हो तो उस बन्धुको पिता भी कह सकते हैं। वही 'गर्भधारिणी स्त्री' कहलाती है, जो ज्ञानोपदेशद्वारा संतानको गर्भवाससे मुक्त कर दे। 'दयारूपा भगिनी' उसको कहते हैं, जिसकी कृपासे प्राणी यमराजके भयसे मुक्त हो जाय। भगवान् विष्णुके मन्त्रको प्रदान करनेवाला गुरु वही है, जो भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करा दे। ज्ञानदाता गुरु उसीको कहते हैं, जिसकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनकी योग्यता प्राप्त हो जाय; क्योंकि ब्रह्मपर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता और नष्ट हो जाता है।

वेद अथवा यज्ञसे जो कुछ सारतत्त्व निकलता है, वह यही है कि भगवान् श्रीहरिका सेवन किया जाय। यही तत्त्वोंका भी तत्त्व है। भगवान् श्रीहरिकी उपासनाके अतिरिक्त सब कुछ केवल विडम्बनामात्र है। मैंने तुम्हें यथार्थ ज्ञानोपदेश कर दिया; क्योंकि स्वामी भी वही कहलाता है, जो ज्ञान प्रदान कर दे। ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त करनेवाला 'स्वामी' माना जाता है और वही यदि बन्धनमें डालता है तो 'शत्रु' है। जो गुरु भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, उसे 'शिष्यघाती' कहते हैं; क्योंकि वह शिष्यको बन्धनमुक्त नहीं कर सका। जो जननीके गर्भमें रहनेके क्लेशसे तथा यमयातनासे मुक्त नहीं कर सकता, उसे गुरु, तात और बान्धव कैसे कहा जाय? भगवान्

श्रीकृष्णका सनातन मार्ग परमानन्द-स्वरूप है। जो निरन्तर ऐसे मार्गका प्रदर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है? अतः साध्वि! तुम निर्गुण एवं अच्युत ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करो; इनकी उपासनासे पुरुषोंके सारे कर्ममूल कट जाते हैं। प्रिये! मैंने जो तुम्हारा त्याग कर दिया है, इस अपराधको क्षमा करो। साध्वी स्त्रियाँ क्षमापरायण होती हैं। सत्त्वगुणके प्रभावसे उनमें क्रोध नहीं रहता। देवि! मैं तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें जा रहा हूँ। तुम भी सुखपूर्वक यहाँसे जा सकती हो; क्योंकि निःस्पृह पुरुषोंके लिये एकमात्र मनोरथ यही है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलकी उपासनामें लग जायँ।

मुनिवर! जरत्कारुका यह वचन सुनकर देवी मनसा शोकसे आतुर हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने विनयभाव प्रदर्शित करते हुए अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे कहा।

देवी मनसा बोली—प्रभो! मैंने आपकी निद्रा भङ्ग कर दी, यह मेरा दोष नहीं कहा जा सकता, जिससे आप मेरा त्याग कर रहे हैं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि जहाँ मैं आपका स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे दर्शन देनेकी कृपा कीजियेगा। पतिव्रता स्त्रियोंके लिये सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रेमका भाजन पति है। पति स्त्रियोंके लिये सम्यक् प्रकारसे प्रिय है; अतएव विद्वान् पुरुषोंने पतिको 'प्रिय' की संज्ञा दी है। जिस प्रकार एक पुत्रवालोंका पुत्रमें, वैष्णव-पुरुषोंका भगवान् श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे जनोंका जलमें, क्षुधातुरोंका अन्नमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका वाणिज्यमें निरन्तर मन लगा रहता है, प्रभो! वैसे ही पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने स्वामीका किङ्कर बना रहता है। इस प्रकार कहकर मनसादेवी अपने स्वामीके चरणोंमें पड़ गयी।

मुनिवर जरत्कारु कृपाके समुद्र थे। उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर क्षणभरके लिये उसे अपनी गोदमें ले लिया। मुनिके नेत्रोंसे जलकी ऐसी धारा गिरी कि वह साध्वी मनसा नहा उठी तथा वियोग-भयसे कातर हुई मनसाने भी अपने आँसुओंसे मुनिके वक्षःस्थलको भिगो दिया। तत्पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हुए।

तदनन्तर मुनिवर जरत्कारु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलका बार-बार स्मरण करते हुए अपनी प्रिया मनसाको समझाकर तपस्या करनेके लिये चले गये। उधर देवी मनसा भी कैलासपर पहुँचकर अपने गुरु भगवान् शंकरके निवास-गृहमें चली गयी। वह शोकसे व्याकुल थी। भगवती पार्वतीने उसे भलीभाँति समझाया। भगवान् शंकरने भी उसे मङ्गलमय ज्ञान देकर ढाढ़स बँधाया। वह शिवधाममें रहने लगी। वहाँ उत्तम दिनकी मङ्गलमयी वेलामें साध्वी मनसाने पुत्र उत्पन्न किया, जो भगवान् नारायणका अंश और योगियों एवं ज्ञानियोंका भी गुरु था। वह गर्भमें था तभी भगवान् शंकरके मुखसे उसे महाज्ञानकी उपलब्धि हो चुकी थी। अतएव वह बालक योगीन्द्र तथा योगियों और ज्ञानियोंका गुरु होनेका अधिकारी बना। भगवान् शंकरने उसका जातकर्म और नामकरण आदि माङ्गलिक संस्कार कराया। भगवान् शिवने उस शिशुके कल्याणार्थ उसे वेद पढ़ाये। बहुत-से मणि, रत्न और किरीट ब्राह्मणोंको दान किये। देवी पार्वतीद्वारा लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न ब्राह्मणोंको वितरण किये गये। भगवान् शिव स्वयं उस बालकको चारों वेद और वेदाङ्ग निरन्तर पढ़ाते रहे। साथ

ही मृत्युञ्जयने श्रेष्ठ ज्ञानका भी उपदेश किया। मनसाकी अपने प्राणवल्लभ पतिमें, इष्टदेव श्रीहरिमें तथा गुरुदेव भगवान् शिवमें पूर्ण भक्ति थी; अतः **'यस्या भक्तिरास्ते तस्याः पुत्रः'**—इस व्युत्पत्तिके अनुसार उस पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ।

(वहाँ आये हुए) मुनिवर जरत्कारु उसी क्षण भगवान् शंकरसे आज्ञा लेकर भगवान् विष्णुकी तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये थे। उन तपोधन मुनिने परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके दीर्घकालतक तप किया। फिर वे महान् योगी मुनि भगवान् शंकरको प्रणाम करनेके विचारसे कैलासपर आये। शंकरको नमस्कार करके कुछ समयके लिये वहीं रुक गये। तबतक वह बालक भी वहीं था। उदार देवी मनसा उस बालकको लेकर अपने पिता कश्यपमुनिके आश्रममें चली आयी। उस समय पुत्रवती कन्याको देखकर प्रजापति कश्यपके मनमें अपार हर्ष हुआ। मुने! उस अवसरपर प्रजापतिने ब्राह्मणोंको प्रचुर रत्न दान किये। शिशुके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया। परंतप! कश्यपजीकी दिति-अदिति तथा अन्य भी जितनी पत्नियाँ थीं, उनके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी वह कन्या मनसा पुत्रके साथ सुदीर्घ कालतक उस आश्रमपर ठहरी रही। इसीके आगेका उपाख्यान कहता हूँ, सुनो।

अभिमन्युकुमार राजा परीक्षित्को ब्राह्मणका शाप लग गया। ब्रह्मन्! दुर्दैवकी प्रेरणासे ऐसा कर्म बन गया कि सहसा परीक्षित् शापसे ग्रस्त हो गये। शृङ्गी ऋषिने कौशिकीका जल हाथमें लेकर शाप दे दिया कि 'एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प तुम्हें काट खायगा।' तक्षकने सातवें दिन उन्हें डँस लिया। राजा सहसा शरीर त्यागकर परलोक चले गये। जनमेजयने उन अपने पिताका दाह-संस्कार कराया। मुने! इसके बाद उन महाराज जनमेजयने सर्पसत्र आरम्भ किया। ब्रह्मतेजके कारण समूह-के-समूह सर्प प्राणोंसे हाथ धोने लगे। तक्षक भयसे घबराकर इन्द्रकी शरणमें चला गया। तब ब्राह्मणमण्डली इन्द्रसहित तक्षकको होम देनेके लिये उद्यत हो गयी। ऐसी स्थितिमें इन्द्रके साथ देवता भगवती मनसाके पास गये। उस समय इन्द्र भयसे अधीर हो उठे थे। उन्होंने भगवती मनसाकी स्तुति की। फलस्वरूप मुनिवर आस्तीक माताकी आज्ञासे राजा जनमेजयके यज्ञमें आये। उन्होंने जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की। ब्राह्मणोंकी आज्ञा अथवा कृपावश राजाने वर दे दिया। यज्ञकी पूर्णाहुति कर दी गयी। सुप्रसन्न राजाद्वारा ब्राह्मण यज्ञान्त-दक्षिणा पा गये। तत्पश्चात् ब्राह्मण, देवता और मुनि सभी देवी मनसाके पास गये तथा सबने पृथक्-पृथक् उस देवीकी पूजा और स्तुति की। इन्द्रने पवित्र हो श्रेष्ठ सामग्रियोंको लेकर उनके द्वारा देवी मनसाका पूजन किया। फिर वे भक्तिपूर्वक नित्य पूजा करने लगे। षोडशोपचारसे अतिशय आदर प्रकट करते हुए उन्होंने पूजा और स्तुति की। यों देवी मनसाकी अर्चना करनेके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके आज्ञानुसार संतुष्ट होकर सभी देवता अपने स्थानोंपर चले गये।

मुने! इस प्रकारकी ये सम्पूर्ण कथाएँ कह चुका। अब आगे और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—प्रभो! देवराज इन्द्रने किस स्तोत्रसे देवी मनसाकी स्तुति की थी तथा किस विधिके क्रमसे पूजन किया था? इस प्रसङ्गको मैं सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! देवराज इन्द्रने स्नान किया। पवित्र हो आचमन करके दो नूतन वस्त्र धारण किये। देवी मनसाको रत्नमय सिंहासनपर पधराया और भक्तिपूर्वक स्वर्गगङ्गाका जल रत्नमय कलशमें लेकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उससे देवीको स्नान कराया। विशुद्ध दो मनोहर अग्निशुद्ध वस्त्र पहननेके लिये अर्पण किये। देवीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दन लगाया।

भक्तिपूर्वक पाद्य और अर्घ्यको उनके सामने निवेदन किया। उस समय देवराज इन्द्रने गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और गौरी—इन छः देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् साध्वी मनसाकी पूजा की थी। '**ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा।**' इस दशाक्षर मूलमन्त्रका उच्चारण करके यथोचित रूपसे पूजनकी सभी सामग्री देवीको अर्पण की। इस तरह सोलह प्रकारकी दुर्लभ वस्तुएँ देवराज इन्द्रके द्वारा साध्वी मनसाकी सेवामें अर्पित हुईं। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे इन्द्र प्रसन्नतापूर्वक भक्तिसहित पूजामें लगे रहे। उस समय उन्होंने नाना प्रकारके बाजे बजवाये। देवी मनसाके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञासे पुलकित-शरीर होकर नेत्रोंमें अश्रु भरे हुए इन्द्रने देवी मनसाकी स्तुति की।

इन्द्र बोले—देवि! तुम साध्वी पतिव्रताओंमें परम श्रेष्ठ तथा परात्पर देवी हो। इस समय मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ; किंतु यह महत्त्वपूर्ण कार्य मेरी शक्तिके बाहर है। देवी प्रकृते! वेदोंमें स्तोत्रोंका लक्षण यह बताया गया है कि स्तुत्यके स्वभावका प्रतिपादन किया जाय; परंतु सुव्रते! मैं तुम्हारे स्वभावका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। तुम शुद्ध-सत्त्वस्वरूपा हो, तुममें कोप और हिंसाका नितान्त अभाव है। यही कारण है कि जरत्कारु मुनिके द्वारा परित्यक्त होनेपर भी तुमने उन मुनिको शाप नहीं दिया। साध्वि! मैंने माता अदितिके समान मानकर तुम्हारा पूजन किया है। तुम मेरी दयारूपिणी भगिनी और माताके समान क्षमाशील हो। सुरेश्वरि! तुमने पुत्र और स्त्रीसहित मेरे प्राणोंकी रक्षा की है, मैं तुम्हें पूजनीया बनाता हूँ। तुम्हारे प्रति मेरी प्रीति निरन्तर बढ़ रही है। जगदम्बिके! यद्यपि इस जगत्में तुम्हारी नित्य पूजा होती है, फिर भी मैं तुम्हारी पूजाका प्रचार और प्रसार कर रहा हूँ। सुरेश्वरि! जो पुरुष आषाढ़ मासकी संक्रान्तिके समय, मनसासंज्ञक पञ्चमी (नागपञ्चमी)-को अथवा आषाढ़से आश्विनतक प्रतिदिन भक्तिके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे, उनके यहाँ पुत्र-पौत्र आदिकी और धनकी वृद्धि होगी—यह निश्चित है। साथ ही वे यशस्वी, कीर्तिमान्, विद्वान् और गुणी होंगे। जो व्यक्ति अज्ञानके कारण तुम्हारी पूजासे विमुख होकर निन्दा करेंगे, उनके यहाँ लक्ष्मी नहीं ठहरेगी और उन्हें सर्पोंसे सदा भय बना रहेगा। तुम स्वयं स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी हो। वैकुण्ठमें कमलाकी कला हो। ये मुनिवर जरत्कारु भगवान् नारायणके साक्षात् अंश हैं। पिताजीने हम सबकी रक्षाके लिये ही तपस्या और तेजके प्रभावसे मनके द्वारा तुम्हारी सृष्टि की है। अतएव तुम मनसादेवी कहलाती हो। देवि! तुम सिद्धयोगिनी हो, अतः स्वतः मनसे देवन (सर्वत्र गमन) करनेकी शक्ति रखती हो; इसलिये जगत्में मनसादेवीके नामसे पूजित और वन्दिता होती हो। देवता भक्तिपूर्वक निरन्तर मनसे तुम्हारी पूजा करते हैं, इसीसे विद्वान् पुरुष तुम्हें मनसादेवी कहते हैं। देवि! तुम सदा सत्त्वका सेवन करनेसे सत्त्वस्वरूपा हो। जो पुरुष जिस वस्तुका निरन्तर चिन्तन करते हैं, वे वैसी वस्तुको सौगुनी संख्यामें पा जाते हैं। मुने! इस प्रकार इन्द्र देवी मनसाकी स्तुति करके वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित उस बहिनको साथ ले अपने निवास-स्थानको चले गये।*

---

*पुरन्दर उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम्॥
परात्परां च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना। स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतत्परम्॥
न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां तव सुव्रते। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसाविवर्जिता॥
न च शप्तो मुनिस्तेन त्यक्तया च त्वया यतः। त्वं मया पूजिता साध्वि जननी मे यथादितिः॥
दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः। त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि॥

देवी मनसाने अपने पुत्रके साथ पिता कश्यपजीके आश्रममें दीर्घकालतक वास किया। भ्रातृवर्ग सदा उनका पूजन, अभिवादन और सम्मान करता था। ब्रह्मन्! तदनन्तर एक बार गोलोकसे सुरभी गौ आयी और उसने अपने दूधसे आदरणीया मनसाको स्नान कराकर सादर उनका पूजन किया। साथ ही, उसने सर्वदुर्लभ गोप्य ज्ञानका भी उपदेश दिया। उस समय सुरभी देवताओंसे पूजित हो स्वर्गलोकमें चली गयी।

यह स्तोत्र पुण्यबीज कहलाता है। जो पुरुष मनसादेवीकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशके लिये भी नागसे भय नहीं हो सकता। यदि यह स्तोत्र सिद्ध हो जाय तो पुरुषके लिये विष भी अमृत-तुल्य हो जाता है। इस स्तोत्रका पाँच लाख जप करनेपर यह सिद्ध हो जाता है। फिर मन्त्रसिद्ध पुरुष सर्पशायी तथा सर्पवाहन हो सकता है अर्थात् उसपर सर्पका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। (अध्याय ४४—४६)

आदिगौ सुरभीदेवीका उपाख्यान

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! वह सुरभीदेवी कौन थी, जो गोलोकसे आयी थी? मैं उसके जन्म और चरित्र सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण बोले—नारद! देवी सुरभी गोलोकमें प्रकट हुई। वह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदि, गौओंकी जननी तथा सम्पूर्ण गौओंमें प्रमुख है। मुने! मैं सबसे पहली सृष्टिका प्रसङ्ग सुना रहा हूँ, जिसके अनुसार पूर्वकालमें वृन्दावनमें उस सुरभीका ही जन्म हुआ था।

एक समयकी बात है। गोपाङ्गनाओंसे घिरे हुए राधापति भगवान् श्रीकृष्ण कौतूहलवश श्रीराधाके साथ पुण्य-वृन्दावनमें गये। वहाँ वे विहार करने लगे। उस समय कौतुकवश उन

अहं करोमि त्वां पूज्यां प्रीतिश्च वर्धते मम ।
तथापि तव पूजां च वर्धयामि च सर्वतः ।
पञ्चम्यां मनसाख्यायामिषान्तं वा दिने दिने ।
यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः ।
लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा ।
नारायणांशो भगवान् जरत्कारुर्मुनीश्वरः ।
अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ।
तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे ।
तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
यो हि यद् भावयेन्नित्यं शतं प्राप्नोति तत्समम् ।
प्रजगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम् ।
नित्यं यद्यपि त्वं पूज्या भवेऽत्र जगदम्बिके ॥
ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः ॥
पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै ॥
ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दन्त्यज्ञानतो जनाः ।
त्वं स्वर्गलक्ष्मीः स्वर्गे च वैकुण्ठे कमलाकला ॥
तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता ॥
मनसा देवितुं शक्ता स्वात्मना सिद्धयोगिनी ॥
ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् ॥
सत्यस्वरूपा देवी त्वं शश्वत्सत्त्वनिषेवया ॥
इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं च ताम् ॥
(प्रकृतिखण्ड ४६। १२८—१४२$\frac{१}{२}$)

स्वेच्छामय प्रभुके मनमें सहसा दूध पीनेकी इच्छा जाग उठी। तब भगवान्‌ने अपने वामपार्श्वसे लीलापूर्वक सुरभी गौको प्रकट किया। उसके साथ बछड़ा भी था। वह दुग्धवती थी। उस सवत्सा गौको सामने देख सुदामाने एक रत्नमय पात्रमें उसका दूध दुहा। वह दूध सुधासे भी अधिक मधुर तथा जन्म और मृत्युको दूर करनेवाला था। स्वयं गोपीपति भगवान् श्रीकृष्णने उस गरम-गरम स्वादिष्ट दूधको पीया। फिर हाथसे छूटकर वह पात्र गिर पड़ा और दूध धरतीपर फैल गया। उस दूधसे वहाँ एक सरोवर बन गया। उसकी लंबाई और चौड़ाई सब ओरसे सौ-सौ योजन थी। गोलोकमें वह सरोवर 'क्षीरसरोवर' नामसे प्रसिद्ध हुआ है। गोपिकाओं और श्रीराधाके लिये वह क्रीड़ा-सरोवर बन गया। भगवान्‌की इच्छासे उस क्रीड़ावापीके घाट तत्काल अमूल्य दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित हो गये। उसी समय अकस्मात् असंख्य कामधेनु प्रकट हो गयीं। जितनी वे गौएँ थीं, उतने ही बछड़े भी उस सुरभी गौके रोमकूपसे निकल आये। फिर उन गौओंके बहुत-से पुत्र-पौत्र भी हुए, जिनकी संख्या नहीं की जा सकती। यों उस सुरभी देवीसे गौओंकी सृष्टि कही गयी, जिससे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।

मुने! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभीकी पूजा की थी। तत्पश्चात् त्रिलोकीमें उस देवीकी दुर्लभ पूजाका प्रचार हो गया। दीपावलीके दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवी सुरभीकी पूजा सम्पन्न हुई थी। यह प्रसङ्ग मैं अपने पिता धर्मके मुखसे सुन चुका हूँ। महाभाग! देवी सुरभीका ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र तथा पूजाकी विधिका वेदोक्त क्रम मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। '**ॐ सुरभ्यै नमः**' सुरभीदेवीका यह षडक्षर-मन्त्र है। एक लाख जप करनेपर मन्त्र सिद्ध होकर भक्तोंके लिये कल्पवृक्षका काम करता है। ध्यान और पूजन यजुर्वेदमें सम्यक् प्रकारसे वर्णित हैं। जो ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली हैं; जो लक्ष्मीस्वरूपा, श्रीराधाकी सहचरी, गौओंकी अधिष्ठात्री, गौओंकी आदिजननी, पवित्ररूपा, पूजनीया, भक्तोंके अखिल मनोरथ सिद्ध करनेवाली हैं तथा जिनसे यह सारा विश्व पावन बना है, उन भगवती सुरभीकी मैं उपासना करता हूँ। कलश, गायके मस्तक, गौओंके बाँधनेके खंभे, शालग्रामकी मूर्ति, जल अथवा अग्निमें देवी सुरभीकी भावना करके द्विज इनकी पूजा करें। जो दीपमालिकाके दूसरे दिन पूर्वाह्णकालमें भक्तिपूर्वक भगवती सुरभीकी पूजा करेगा, वह जगत्‌में पूज्य हो जायगा।

एक बार वाराहकल्पमें देवी सुरभीने दूध देना बंद कर दिया। उस समय त्रिलोकीमें दूधका अभाव हो गया था। तब देवता अत्यन्त चिन्तित होकर ब्रह्मलोकमें गये और ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर इन्द्रने देवी सुरभीकी स्तुति आरम्भ की।

इन्द्रने कहा—देवी एवं महादेवी सुरभीको बार-बार नमस्कार है। जगदम्बिके! तुम गौओंकी बीजस्वरूपा हो; तुम्हें नमस्कार है। तुम श्रीराधाको प्रिय हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम लक्ष्मीकी अंशभूता हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है। श्रीकृष्ण-प्रियाको नमस्कार है। गौओंकी माताको बार-बार नमस्कार है। जो सबके लिये कल्पवृक्षस्वरूपा तथा श्री, धन और वृद्धि प्रदान करनेवाली हैं, उन भगवती सुरभीको बार-बार नमस्कार है। शुभदा, प्रसन्ना और गोप्रदायिनी सुरभी देवीको बार-बार नमस्कार है। यश और कीर्ति प्रदान करनेवाली धर्मज्ञा देवीको बार-बार नमस्कार है।*

---

*पुरन्दर उवाच—

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥

इस प्रकार स्तुति सुनते ही सनातनी जगज्जननी भगवती सुरभी संतुष्ट और प्रसन्न हो उस ब्रह्मलोकमें ही प्रकट हो गयीं। देवराज इन्द्रको परम दुर्लभ मनोवाञ्छित वर देकर वे पुनः गोलोकको चली गयीं। देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। नारद! फिर तो सारा विश्व सहसा दूधसे परिपूर्ण हो गया। दूधसे घृत बना और घृतसे यज्ञ सम्पन्न होने लगे तथा उनसे देवता संतुष्ट हुए।

जो मानव इस महान् पवित्र स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह गोधनसे सम्पन्न, प्रचुर सम्पत्तिवाला, परम यशस्वी और पुत्रवान् हो जायगा। उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने तथा अखिल यज्ञोंमें दीक्षित होनेका फल सुलभ होगा। ऐसा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके धाममें चला जाता है। चिरकालतक वहाँ रहकर भगवान्‌की सेवा करता रहता है। नारद! उसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता। (अध्याय ४७)

नारद-नारायण-संवादमें पार्वतीजीके पूछनेपर महादेवजीके द्वारा श्रीराधाके प्रादुर्भाव एवं महत्त्व आदिका वर्णन

नारदजी बोले— भगवान् नारायणके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले महाभाग मुनिवर नारायण! आप नारायणके ही अंश हैं। अतः भगवन्! आप नारायणसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा कहिये। सुरभीका उपाख्यान अत्यन्त मनोहर है, उसे मैंने सुन लिया। वह समस्त पुराणोंमें गोपनीय कहा गया है। पुराणवेत्ताओंने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। अब मैं श्रीराधाका परम उत्तम आख्यान सुनना चाहता हूँ। उनके प्रादुर्भावके प्रसङ्ग तथा उनके ध्यान, स्तोत्र और उत्तम कवचको भी सुननेकी मेरी प्रबल इच्छा है; अतः आप इन सबका वर्णन कीजिये।

मुनिवर श्रीनारायणने कहा—नारद! पूर्वकालकी बात है, कैलास-शिखरपर सनातन भगवान् शंकर, जो सर्वस्वरूप, सबसे श्रेष्ठ, सिद्धोंके स्वामी तथा सिद्धिदाता हैं, बैठे हुए थे। मुनिलोग भी उनकी स्तुति करके उनके पास ही बैठे थे। भगवान् शिवका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था। उनके अधरोंपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे कुमारको परमात्मा श्रीकृष्णके

रासोत्सवका सरस आख्यान सुना रहे थे। उस प्रसङ्गके श्रवणमें कुमारकी बड़ी रुचि थी। रासमण्डलका वर्णन चल रहा था। जब इस

नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः। नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परम्। श्रीदायै धनदायै च वृद्धिदायै नमो नमः॥
शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै कीर्तिदायै धर्मज्ञायै नमो नमः॥
(प्रकृतिखण्ड ४७। २४—२७)

आख्यानकी समाप्ति हुई और अपनी बात प्रस्तुत करनेका अवसर आया, उस समय सती-साध्वी पार्वती मन्द मुस्कानके साथ अपने प्राणवल्लभके समक्ष प्रश्न उपस्थित करनेको उद्यत हुईं। पहले तो वे डरती हुई-सी स्वामीकी स्तुति करने लगीं। फिर जब प्राणेश्वरने मधुर वचनोंद्वारा उन्हें प्रसन्न किया, तब वे देवेश्वरी महादेवी उमा महादेवजीके सामने वह अपूर्व राधिकोपाख्यान सुनानेके लिये अनुरोध करने लगीं, जो पुराणोंमें भी परम दुर्लभ है।

श्रीपार्वती बोलीं—नाथ! मैंने आपके मुखारविन्दसे पाञ्चरात्र आदि सारे उत्तमोत्तम आगम, नीतिशास्त्र, योगियोंके योगशास्त्र, सिद्धोंके सिद्धि-शास्त्र, नानाप्रकारके मनोहर तन्त्रशास्त्र, परमात्मा श्रीकृष्णके भक्तोंके भक्तिशास्त्र तथा समस्त देवियोंके चरित्रका श्रवण किया। अब मैं श्रीराधाका उत्तम आख्यान सुनना चाहती हूँ। श्रुतिमें कण्वशाखाके भीतर श्रीराधाकी प्रशंसा संक्षेपसे की गयी है, उसे मैंने आपके मुखसे सुना है; अब व्यासद्वारा वर्णित श्रीराधाकी महत्ता सुनाइये। पहले आगमाख्यानके प्रसङ्गमें आपने मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार किया था। ईश्वरकी वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती। अतः आप श्रीराधाके प्रादुर्भाव, ध्यान, उत्तम नाम-माहात्म्य, उत्तम पूजा-विधान, चरित्र, स्तोत्र, उत्तम कवच, आराधन-विधि तथा अभीष्ट पूजा-पद्धतिका इस समय वर्णन कीजिये। भक्तवत्सल! मैं आपकी भक्त हूँ, अतः मुझे ये सब बातें अवश्य बताइये। साथ ही, इस बातपर भी प्रकाश डालिये कि आपने आगमाख्यानसे पहले ही इस प्रसङ्गका वर्णन क्यों नहीं किया था?

पार्वतीका उपर्युक्त वचन सुनकर भगवान् पञ्चमुख शिवने अपना मस्तक नीचा कर लिया। अपना सत्य भङ्ग होनेके भयसे वे मौन हो गये—चिन्तामें पड़ गये। उस समय उन्होंने अपने इष्टदेव करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णका ध्यानद्वारा स्मरण किया और उनकी आज्ञा पाकर वे अपनी अर्धाङ्गस्वरूपा पार्वतीसे इस प्रकार बोले—'देवि! आगमाख्यानका आरम्भ करते समय मुझे परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने राधाख्यानके प्रसङ्गसे रोक दिया था, परंतु महेश्वरि! तुम तो मेरा आधा अङ्ग हो; अतः स्वरूपतः मुझसे भिन्न नहीं हो। इसलिये भगवान् श्रीकृष्णने इस समय मुझे यह प्रसङ्ग तुम्हें सुनानेकी आज्ञा दे दी है। सतीशिरोमणे! मेरे इष्टदेवकी वल्लभा श्रीराधाका चरित्र अत्यन्त गोपनीय, सुखद तथा श्रीकृष्णभक्ति प्रदान करनेवाला है। दुर्गे! वह सब पूर्वापर श्रेष्ठ प्रसङ्ग मैं जानता हूँ। मैं जिस रहस्यको जानता हूँ, उसे ब्रह्मा तथा नागराज शेष भी नहीं जानते। सनत्कुमार, सनातन, देवता, धर्म, देवेन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र तथा सिद्धपुङ्गवोंको भी उसका ज्ञान नहीं है। सुरेश्वरि! तुम मुझसे भी बलवती हो; क्योंकि इस प्रसङ्गको न सुनानेपर अपने प्राणोंका परित्याग कर देनेको उद्यत हो गयी थीं। अतः मैं इस गोपनीय विषयको भी तुमसे कहता हूँ। दुर्गे! यह परम अद्भुत रहस्य है। मैं इसका कुछ वर्णन करता हूँ, सुनो। श्रीराधाका चरित्र अत्यन्त पुण्यदायक तथा दुर्लभ है।

एक समय रासेश्वरी श्रीराधाजी श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे मिलनेको उत्सुक हुईं। उस समय वे रत्नमय सिंहासनपर अमूल्य रत्नाभरणोंसे विभूषित होकर बैठी थीं। अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहा था। उनकी मनोहर अङ्गकान्ति करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंको लज्जित कर रही थी। उनकी प्रभा तपाये हुए सुवर्णके सदृश जान पड़ती थी। वे अपनी ही दीप्तिसे दमक रही थीं। शुद्धस्वरूपा श्रीराधाके अधरपर मन्द मुसकान खेल रही थी। उनकी दन्तपंक्ति बड़ी ही सुन्दर थी। उनका मुखारविन्द शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। वे मालती-सुमनोंकी मालासे मण्डित रमणीय केशपाश धारण करती थीं। उनके गलेकी रत्नमयी माला

ग्रीष्म-ऋतुके सूर्यके समान दीप्तिमती थी। कण्ठमें प्रकाशित शुभ मुक्ताहार गङ्गाकी धवल धारके समान शोभा पा रहा था। रसिकशेखर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने मन्द-मन्द मुस्कराती हुई अपनी उन प्रियतमाको देखा। प्राणवल्लभापर दृष्टि पड़ते ही विश्वकान्त श्रीकृष्ण मिलनके लिये उत्सुक हो गये। परम मनोहर कान्तिवाले प्राणवल्लभको देखते ही श्रीराधा उनके सामने दौड़ी गयीं। महेश्वरि! उन्होंने अपने प्राणारामकी ओर धावन किया, इसीलिये पुराणवेत्ता महापुरुषोंने उनका 'राधा' यह सार्थक नाम निश्चित किया। राधा श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधाकी। वे दोनों परस्पर आराध्य और आराधक हैं। संतोंका कथन है कि उनमें सभी दृष्टियोंसे पूर्णतः समता है।* महेश्वरि! मेरे ईश्वर श्रीकृष्ण रासमें प्रियाजीके धावनकर्मका स्मरण करते हैं, इसीलिये वे उन्हें 'राधा' कहते हैं, ऐसा मेरा अनुमान है। दुर्गे! भक्त पुरुष 'रा' शब्दके उच्चारणमात्रसे परम दुर्लभ मुक्तिको पा लेता है और 'धा' शब्दके उच्चारणसे वह निश्चय ही श्रीहरिके चरणोंमें दौड़कर पहुँच जाता है। 'रा' का अर्थ है 'पाना' और 'धा' का अर्थ है 'निर्वाण' (मोक्ष)। भक्तजन उनसे निर्वाण-मुक्ति पाता है, इसलिये उन्हें 'राधा' कहा गया है। श्रीराधाके रोमकूपोंसे गोपियोंका समुदाय प्रकट हुआ है तथा श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे सम्पूर्ण गोपोंका प्रादुर्भाव हुआ है। श्रीराधाके वामांश-भागसे महालक्ष्मीका प्राकट्य हुआ है। वे ही शस्यकी अधिष्ठात्री देवी तथा गृहलक्ष्मीके रूपमें भी आविर्भूत हुई हैं। देवी महालक्ष्मी चतुर्भुज विष्णुकी पत्नी हैं और वैकुण्ठधाममें वास करती हैं। राजाको सम्पत्ति देनेवाली राजलक्ष्मी भी उन्हींकी अंशभूता हैं। राजलक्ष्मीकी अंशभूता मर्त्यलक्ष्मी हैं, जो गृहस्थोंके घर-घरमें वास करती हैं। वे ही शस्याधिष्ठातृदेवी तथा वे ही गृहदेवी हैं। स्वयं श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्रियतमा हैं तथा श्रीकृष्णके ही वक्षःस्थलमें वास करती हैं। वे उन परमात्मा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं।†

पार्वति! ब्रह्मासे लेकर तृण अथवा कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् मिथ्या ही है। केवल त्रिगुणातीत परब्रह्म परमात्मा श्रीराधावल्लभ श्रीकृष्ण ही परम सत्य हैं; अतः तुम उन्हींकी आराधना करो।‡ वे सबसे प्रधान, परमात्मा, परमेश्वर, सबके आदिकारण, सर्वपूज्य, निरीह तथा प्रकृतिसे परे विराजमान हैं। उनका नित्यरूप स्वेच्छामय है। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही शरीर धारण करते हैं। श्रीकृष्णसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देवता हैं; उनका रूप प्राकृत तत्त्वोंसे ही गठित है। श्रीराधा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। वे परम सौभाग्यशालिनी हैं। वे मूलप्रकृति परमेश्वरी श्रीराधा महाविष्णुकी जननी हैं। संत पुरुष मानिनी राधाका सदा सेवन करते हैं। उनका चरणारविन्द ब्रह्मादि देवताओंके लिये परम दुर्लभ होनेपर भी भक्तजनोंके लिये सदा सुलभ है। सुदामाके शापसे देवी श्रीराधाको गोलोकसे इस भूतलपर आना पड़ा था। उस समय वे वृषभानु गोपके घरमें अवतीर्ण हुई थीं। वहाँ उनकी माता कलावती थीं। (अध्याय ४८)

---

* राधा भजति श्रीकृष्णं स च तां च परस्परम्। उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च॥
(प्रकृतिखण्ड ४८। ३८)

† प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः। (प्रकृतिखण्ड ४८। ४७)

‡ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति। भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्॥
(प्रकृतिखण्ड ४८। ४८)

श्रीराधा और श्रीकृष्णके चरित्र तथा श्रीराधाकी पूजा-परम्पराका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वति! एक समयकी बात है, श्रीकृष्ण विरजा नामवाली सखीके यहाँ उसके पास थे। इससे श्रीराधाजीको क्षोभ हुआ। इस कारण विरजा वहाँ नदीरूप होकर प्रवाहित हो गयी। विरजाकी सखियाँ भी छोटी-छोटी नदियाँ बनीं। पृथ्वीकी बहुत-सी नदियाँ और सातों समुद्र विरजासे ही उत्पन्न हैं। राधाने प्रणयकोपसे श्रीकृष्णके पास जाकर उनसे कुछ कठोर शब्द कहे। सुदामाने इसका विरोध किया। इसपर लीलामयी श्रीराधाने उसे असुर होनेका शाप दे दिया। सुदामाने भी लीलाक्रमसे ही श्रीराधाको मानवीरूपमें प्रकट होनेकी बात कह दी। सुदामा माता राधा तथा पिता श्रीहरिको प्रणाम करके जब जानेको उद्यत हुआ तब श्रीराधा पुत्रविरहसे कातर हो आँसू बहाने लगीं। श्रीकृष्णने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और शीघ्र उसके लौट आनेका विश्वास दिलाया। सुदामा ही तुलसीका स्वामी शङ्खचूड़ नामक असुर हुआ था, जो मेरे शूलसे विदीर्ण एवं शापमुक्त हो पुनः गोलोक चला गया। सती राधा इसी वाराहकल्पमें गोकुलमें अवतीर्ण हुई थीं। वे व्रजमें वृषभानु वैश्यकी कन्या हुईं। वे देवी अयोनिजा थीं, माताके पेटसे नहीं पैदा हुई थीं। उनकी माता कलावतीने अपने गर्भमें 'वायु' को धारण कर रखा था। उसने योगमायाकी प्रेरणासे वायुको ही जन्म दिया; परंतु वहाँ स्वेच्छासे श्रीराधा प्रकट हो गयीं। बारह वर्ष बीतनेपर उन्हें नूतन यौवनमें प्रवेश करती देख माता-पिताने 'रायाण' वैश्यके साथ उसका सम्बन्ध निश्चित कर दिया। उस समय श्रीराधा घरमें अपनी छायाको स्थापित करके स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। उस छायाके साथ ही उक्त रायाणका विवाह हुआ।

'जगत्पति श्रीकृष्ण कंसके भयसे रक्षाके बहाने शैशवावस्थामें ही गोकुल पहुँचा दिये गये थे। वहाँ श्रीकृष्णकी माता जो यशोदा थीं, उनका सहोदर भाई 'रायाण' था। गोलोकमें तो वह श्रीकृष्णका अंशभूत गोप था, पर इस अवतारके समय भूतलपर वह श्रीकृष्णका मामा लगता था। जगत्स्रष्टा विधाताने पुण्यमय वृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ साक्षात् श्रीराधाका विधिपूर्वक विवाहकर्म सम्पन्न कराया था। गोपगण स्वप्नमें भी श्रीराधाके चरणारविन्दका दर्शन नहीं कर पाते थे। साक्षात् राधा श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें वास करती थीं और छायाराधा रायाणके घरमें। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें श्रीराधाके चरणारविन्दका दर्शन पानेके लिये पुष्करमें साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी; उसी तपस्याके फलस्वरूप इस समय उन्हें श्रीराधा-चरणोंका दर्शन प्राप्त हुआ था। गोकुलनाथ श्रीकृष्ण कुछ कालतक वृन्दावनमें श्रीराधाके साथ आमोद-प्रमोद करते रहे। तदनन्तर सुदामाके शापसे उनका श्रीराधाके साथ वियोग हो गया। इसी बीचमें श्रीकृष्णने पृथ्वीका भार उतारा। सौ वर्ष पूर्ण हो जानेपर तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे श्रीराधाने श्रीकृष्णका और श्रीकृष्णने श्रीराधाका दर्शन प्राप्त किया। तदनन्तर तत्त्वज्ञ श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गोलोकधाम पधारे। कलावती (कीर्तिदा) और यशोदा भी श्रीराधाके साथ ही गोलोक चली गयीं।

प्रजापति द्रोण नन्द हुए। उनकी पत्नी धरा यशोदा हुईं। उन दोनोंने पहले की हुई तपस्याके प्रभावसे परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। महर्षि कश्यप वसुदेव हुए थे। उनकी पत्नी सती साध्वी अदिति अंशतः देवकीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। प्रत्येक कल्पमें जब भगवान् अवतार लेते हैं, देवमाता अदिति तथा देवपिता कश्यप उनके माता-पिताका स्थान ग्रहण करते हैं। श्रीराधाकी माता कलावती (कीर्तिदा)

पितरोंकी मानसी कन्या थी। गोलोकसे वसुदाम गोप ही वृषभानु होकर इस भूतलपर आये थे।

दुर्गे! इस प्रकार मैंने श्रीराधाका उत्तम उपाख्यान सुनाया। यह सम्पत्ति प्रदान करनेवाला, पापहारी तथा पुत्र और पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाला है। श्रीकृष्ण दो रूपोंमें प्रकट हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुजरूपसे वे वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्ण गोलोकधाममें। चतुर्भुजकी पत्नी महालक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी हैं। ये चारों देवियाँ चतुर्भुज नारायणदेवकी प्रिया हैं। श्रीकृष्णकी पत्नी श्रीराधा हैं, जो उनके अर्धाङ्गसे प्रकट हुई हैं। वे तेज, अवस्था, रूप तथा गुण सभी दृष्टियोंसे उनके अनुरूप हैं। विद्वान् पुरुषको पहले 'राधा' नामका उच्चारण करके पश्चात् 'कृष्ण' नामका उच्चारण करना चाहिये। इस क्रमसे उलट-फेर करनेपर वह पापका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है।

कार्तिककी पूर्णिमाको गोलोकके रासमण्डलमें श्रीकृष्णने श्रीराधाका पूजन किया और तत्सम्बन्धी महोत्सव रचाया। उत्तम रत्नोंकी गुटिकामें राधा-कवच रखकर गोपोंसहित श्रीहरिने उसे अपने कण्ठ और दाहिनी बाँहमें धारण किया। भक्तिभावसे उनका ध्यान करके स्तवन किया। फिर मधुसूदनने राधाके चबाये हुए ताम्बूलको लेकर स्वयं खाया। राधा श्रीकृष्णकी पूजनीया हैं और भगवान् श्रीकृष्ण राधाके पूजनीय हैं। वे दोनों एक-दूसरेके इष्ट देवता हैं। उनमें भेदभाव करनेवाला पुरुष नरकमें पड़ता है।* श्रीकृष्णके बाद धर्मने, ब्रह्माजीने, मैंने, अनन्तने, वासुकिने तथा सूर्य और चन्द्रमाने श्रीराधाका पूजन किया। तत्पश्चात् देवराज इन्द्र, रुद्रगण, मनु, मनुपुत्र, देवेन्द्रगण, मुनीन्द्रगण तथा सम्पूर्ण विश्वके लोगोंने श्रीराधाकी पूजा की। ये सब द्वितीय आवरणके पूजक हैं। तृतीय आवरणमें सातों द्वीपोंके सम्राट् सुयज्ञने तथा उनके पुत्र-पौत्रों एवं मित्रोंने भारतवर्षमें प्रसन्नतापूर्वक श्रीराधिकाका पूजन किया। उन महाराजको दैववश किसी ब्राह्मणने शाप दे दिया था, जिससे उनका हाथ रोगग्रस्त हो गया था। इस कारण वे मन-ही-मन बहुत दुःखी रहते थे। उनकी राज्यलक्ष्मी छिन गयी थी; परंतु श्रीराधाके वरसे उन्होंने अपना राज्य प्राप्त कर लिया। ब्रह्माजीके दिये हुए स्तोत्रसे परमेश्वरी श्रीराधाकी स्तुति करके राजाने उनके अभेद्य कवचको कण्ठ और बाँहमें धारण किया तथा पुष्करतीर्थमें सौ वर्षोंतक ध्यानपूर्वक उनकी पूजा की। अन्तमें वे महाराज रत्नमय विमानपर सवार होकर गोलोकधाममें चले गये। पार्वति! यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ४९)

राजा सुयज्ञकी यज्ञशीलता और उन्हें ब्राह्मणके शापकी प्राप्ति, ऋषियोंद्वारा ब्राह्मणको क्षमाके लिये प्रेरित करते हुए कृतघ्नोंके भेद तथा विभिन्न पापोंके फलका प्रतिपादन

पार्वतीने पूछा—प्रभो! राजा सुयज्ञ कौन थे? किस वंशमें उनका जन्म हुआ था? उन्हें ब्राह्मणका शाप कैसे प्राप्त हुआ था और किस तरह श्रीराधाजीको वे पा सके? जो सर्वात्मा श्रीकृष्णकी पत्नी हैं तथा साक्षात् श्रीकृष्णने जिनका पूजन किया है, उन्हीं परमेश्वरी श्रीराधाकी सेवाका सौभाग्य एक मल-मूत्रधारी मनुष्यको कैसे मिल सका? जिनके चरणारविन्दोंकी रजको पानेके लिये ब्रह्माजीने पूर्वकालमें पुष्करतीर्थके भीतर साठ हजार वर्षोंतक तप किया तथा जिनका

* राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान् प्रभुः। परस्पराभीष्टदेवो भेदकृन्नरकं व्रजेत्॥
(प्रकृतिखण्ड ४९। ६३)

दर्शन पाना आपके लिये भी अत्यन्त कठिन है, उन्हीं पुरातनी महालक्ष्मी श्रीराधादेवीका दर्शन राजा सुयज्ञने कैसे किया? वे मनुष्योंके दृष्टिपथमें कैसे आयीं? तीनों लोकोंके स्रष्टा ब्रह्माने राजा सुयज्ञको श्रीराधाका कवच किस प्रकार दिया? उनके ध्यान, पूजन-विधि तथा स्तोत्रका उपदेश कैसे दिया? यह सब बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! चौदह मनुओंमें जो सबसे प्रथम हैं, उन्हें स्वायम्भुव मनु कहते हैं। वे ब्रह्माजीके पुत्र और तपस्वी कहे गये हैं। उन्होंने शतरूपासे विवाह किया था। मनु और शतरूपाके पुत्र उत्तानपाद हुए। उत्तानपादके पुत्र केवल ध्रुव हैं। गिरिराजनन्दिनि! ध्रुवकी कीर्ति तीनों लोकोंमें विख्यात है। ध्रुवके पुत्र उत्कल हुए, जो भगवान् नारायणके अनन्य भक्त थे। उन्होंने पुष्करतीर्थमें एक हजार राजसूय-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, उस यज्ञमें सारे पात्र रत्नोंके बने हुए थे। राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ वे सब पात्र ब्राह्मणोंको दान कर दिये थे। यज्ञान्तमहोत्सवमें राजाने बहुमूल्य वस्त्रोंकी सहस्रों राशियाँ जो तेजःपुञ्जसे उद्भासित होती थीं,

ब्राह्मणोंको बाँट दीं। प्रिये! उस सुन्दर यज्ञको देखकर ब्रह्माजीने देवसभामें राजा उत्कलका नाम सुयज्ञ रख दिया। राजा सुयज्ञ अन्न, रत्न तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियोंके दाता थे। वे प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक उचित दक्षिणाके साथ ब्राह्मणोंको दस-बारह लाख गौएँ दानमें देते थे। उन गौओंके सींग रत्नोंसे मढ़े होते थे तथा दुग्धपात्र आदि सामग्री भी रत्नमयी ही होती थी। वे प्रतिदिन छः करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन कराया करते थे। उन्हें प्रतिदिन चूसने, चबाने, चाटने और पीनेयोग्य भोजनसामग्री देकर तृप्त करते थे। नित्यप्रति एक लाख रसोइयोंको भोजन दिया करते थे। पूआ, रोटी-चावल आदि अन्न, दाल आदि व्यञ्जन दहीके साथ परोसे जाते थे। उस भोजनसामग्रीमें मांसका सर्वथा अभाव होता था। ब्राह्मणलोग भोजनके समय मनुवंशी राजा सुयज्ञकी ही नहीं, उनके पितरोंकी भी स्तुति करते थे। सुन्दरि! यज्ञके दिनोंमें तथा उसकी समाप्तिके दिन कुल मिलाकर छत्तीस लाख करोड़ ब्राह्मणोंने अत्यन्त तृप्तिपूर्वक सु-अन्न भोजन किया था। उन्होंने दक्षिणामें इतने रत्न ग्रहण किये थे कि उन सबको अपने घरतक ढो ले जाना उनके लिये असम्भव हो गया था। कुछ तो उन्होंने शूद्रोंको बाँट दिया और कुछ रास्तेमें छोड़ दिया। ब्राह्मण-भोजनके अन्तमें राजाने ब्राह्मणेतरोंको भी भोजन दिया तथापि वहाँ अन्नकी सहस्रों राशियाँ शेष रह गयीं।

इस प्रकार यज्ञ करके महाबाहु राजा सुयज्ञ अपनी राजसभामें रमणीय रत्न-सिंहासनपर बैठे हुए थे। वह सिंहासन रत्नेन्द्रसारसे निर्मित अनेक छत्रोंसे सुशोभित था। उसे अच्छी तरह सजाया गया था। उसपर चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेप हुआ था। चन्दनपल्लवोंसे उसकी रमणीयता और बढ़ गयी थी। वहाँ वसु, वासव, चन्द्रमा, इन्द्र, आदित्यगण, मुनिवर नारद तथा बड़े-बड़े देवता विराजमान थे। इसी समय वहाँ एक ब्राह्मण आया,

जो रूखा और मलिन वस्त्र पहने था। उसके कण्ठ, ओठ और तालु सूखे हुए थे। उसने मुसकराते हुए हाथ जोड़कर रत्नसिंहासनपर बैठे हुए पुष्पमाला और चन्दनसे चर्चित राजाको आशीर्वाद दिया। राजाने भी ब्राह्मणको प्रणाम तो किया, किंतु वे अपने स्थानसे उठे नहीं। उस सभाके सभासद् भी ब्राह्मणकी ओर देखकर खड़े नहीं हुए। वे सभी थोड़ा-थोड़ा हँसते रहे। तब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनियों और देवताओंको नमस्कार करके निरङ्कुश-भावसे वहाँ खड़ा हो गया और क्रोधपूर्वक राजाको

शाप देता हुआ बोला—'ओ पामर! तू इस राज्यसे दूर चला जा, श्रीहीन हो जा तथा शीघ्र ही गलित कोढ़से युक्त, बुद्धिहीन और उपद्रवोंसे ग्रस्त हो जा।' ऐसा कहकर क्रोधसे काँपता हुआ ब्राह्मण सभासदोंको शाप देनेके लिये उद्यत हो गया। जो लोग वहाँ हँसे थे, वे सब उठकर खड़े हो गये। उन सबने अपने दोषका परिहार कर लिया। अतः उनकी ओरसे ब्राह्मणका क्रोध जाता रहा।

राजा उस ब्राह्मणको प्रणाम करके भयसे कातर हो रोने लगे। वे व्यथित-हृदयसे सभाके बीचसे बाहर निकले। तब गूढ़रूपवाले वे ब्राह्मणदेवता भी ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होते हुए चल दिये। उनके पीछे-पीछे भयसे कातर हुए समस्त मुनि भी चले और बारंबार उच्चस्वरसे पुकारने लगे—'हे विप्र! ठहरो, ठहरो।' उन मुनियोंके नाम इस प्रकार हैं—पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, कश्यप, वसिष्ठ, क्रतु, शुक्र, बृहस्पति, दुर्वासा, लोमश, गौतम, कणाद, कण्व, कात्यायन, कठ, पाणिनि, जाजलि, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, आपिशलि, तैत्तिलि, महातपस्वी मार्कण्डेय, वोढु, पैल, सनक, सनन्दन, सनातन, भगवान् सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषि, पराशर, जरत्कारु, संवर्त, करथ, और्व, च्यवन, भरद्वाज, वाल्मीकि, अगस्त्य, अत्रि, उतथ्य, संकर्त, आस्तीक, आसुरि, शिलालि, लाङ्गलि, शाकल्य, शाकटायन, गर्ग, वात्स्य, पञ्चशिख, जमदग्नि, देवल, जैगीषव्य, वामदेव, बालखिल्य आदि, शक्ति, दक्ष, कर्दम, प्रस्कन्न, कपिल, विश्वामित्र, कौत्स, ऋचीक और अघमर्षण—ये तथा और भी मुनि, पितर, अग्नि, हरिप्रिय, दिक्पाल तथा समस्त देवता भी ब्राह्मणके पीछे-

पीछे चले। पार्वति! उन नीतिविशारद मुनियोंने

ब्राह्मणको समझाया, एक स्थानपर ठहराया और क्रमशः उनसे नीतिकी बातें कहीं।

पार्वतीने पूछा—प्रभो! ब्राह्मणों और ब्रह्माजीके पुत्रोंने, जो नीतिके विद्वान् थे, उस समय उन ब्राह्मणदेवतासे नीतिकी कौन-सी बात कही, यह मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीमहादेवजी बोले—सुमुखि! उस मुनि-समुदायने स्तुति और विनयसे ब्राह्मणको संतुष्ट करके क्रमशः इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

सनत्कुमारने कहा—ब्रह्मन्! तुम्हारे पीछे-पीछे राजाकी लक्ष्मी और कीर्ति भी चली आयी है। सत्त्व, यश, सुशीलता, महान् ऐश्वर्य, पितर, अग्नि और देवता भी राजाको श्रीहीन करके उनके घरसे बाहर चले आये हैं। द्विजश्रेष्ठ! अब तुम संतुष्ट हो जाओ; क्योंकि ब्राह्मण शीघ्र ही संतुष्ट होनेवाला कहा गया है। मुने! ब्राह्मणोंका हृदय नवनीतके समान कोमल होता है। वह तपस्यासे परिमार्जित होनेके कारण अत्यन्त निर्मल और शुद्ध होता है। अतः विप्रवर! अब क्षमा करो। आओ और राजभवनको पवित्र करो। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसके देवता, पितर तथा अग्नि भी निराश होकर लौट जाते हैं; क्योंकि वहाँ अतिथिका सत्कार नहीं हुआ। इसलिये विप्रवर! क्षमा करो, आओ और राजभवनको शुद्ध करो।

पुलस्त्यजी बोले—जो घरपर आये हुए अतिथिको टेढ़ी आँखोंसे देखते हैं, उन्हें अतिथि अपना पाप देकर और उनके पुण्य लेकर चला जाता है। अतः तुम राजाके दोषको क्षमा कर दो। वत्स! तुम्हारी जहाँ मौज हो, जाओ। राजा अपने कर्मदोषसे ही उठकर खड़े नहीं हुए थे। उनके उस दोषको तुम क्षमा कर दो।

पुलहने कहा—जो क्षत्रिय, राजलक्ष्मीके मदसे अथवा जो ब्राह्मण विद्याके मदसे किसी ब्राह्मणका अपमान करता है, वह क्षत्रिय श्रीहीन होता है तथा वह ब्राह्मण त्रिकाल संध्यासे शून्य हो जाता है। वे दोनों ही एकादशीव्रत तथा भगवान् विष्णुके नैवेद्यसे वञ्चित हो जाते हैं।

क्रतु बोले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी क्यों न हो, जो ब्राह्मणका अपमान करता है, वह दीक्षाके पुण्य और अधिकारसे भ्रष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं, उसका धन नष्ट हो जाता है तथा वह पुत्र और पत्नीसे भी हीन हो जाता है। यह एक अटल सत्य है, अतः भगवन्! क्षमा करो। आओ और राजाके घरको पवित्र करो।

अङ्गिराने कहा—जो ज्ञानवान् ब्राह्मण होकर किसी ब्राह्मणका अपमान करता है, वह भारतवर्षमें सात जन्मोंतक सवारी ढोनेवाला बैल होता है।

मरीचि बोले—जो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें देवता, ब्राह्मण तथा गुरुका अपमान करता है, वह भगवान् विष्णुकी भक्तिसे वञ्चित हो जाता है।

कश्यपने कहा—जो वैष्णव ब्राह्मणको देखकर उसका अपमान करता है, वह विष्णुमन्त्रकी दीक्षासे वञ्चित हो विष्णुपूजासे भी विरत हो जाता है।

प्रचेता बोले—जो अतिथि ब्राह्मणको आया देख उसके लिये अभ्युत्थान नहीं करता—उठकर खड़ा नहीं हो जाता, वह भारतभूमिमें माता-पिताकी भक्तिसे रहित होता है। उस मूढ़को सात जन्मोंतक हाथीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। अतः द्विजश्रेष्ठ! शीघ्र चलो। राजाको आशीर्वाद दो।

दुर्वासाने कहा—जो गुरु, ब्राह्मण अथवा देवताकी प्रतिमाको देखकर शीघ्र ही उसके सामने मस्तक नहीं झुकाता, वह पृथ्वीपर सूअर होता है। अतः ब्रह्मन्! हमारे सब अपराधोंको क्षमा करो और चलकर अतिथि-सत्कार ग्रहण करो।

राजाने पूछा—आप सब लोग श्रेष्ठ मुनि हैं। आपने किसी-न-किसी बहानेसे धर्मका उपदेश किया है। अतः सब कुछ स्पष्ट बताकर

मुझ मूर्खको समझाइये। विद्वद्वरो! आप लोग पहले मुझे यह बतावें कि स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, गुरुपत्नीगमन तथा ब्रह्महत्या करनेवालोंको कौन-सा दोष लगता है तथा उसका परिहार कैसे होता है?

वसिष्ठजी बोले—राजन्! यदि स्वेच्छापूर्वक गो-वधका पाप किया गया हो तो उसके प्रायश्चित्तके लिये मनुष्य एक वर्षतक तीर्थोंमें भ्रमण करता रहे। वह प्रतिदिन जौकी रोटी अथवा जौकी लप्सी खाये और हाथसे ही जल पीये। वर्ष पूरा होनेपर ब्राह्मणोंको दक्षिणासहित सौ अच्छी और दुधारू गौंओंका दान करे। प्रायश्चित्तसे पाप क्षीण हो जानेपर भी मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापसे मुक्त नहीं होता। जो पाप शेष रह जाता है, उसीके फलसे वह दुःखी एवं चाण्डाल होता है। यदि आतिदेशिक हत्या हुई हो अर्थात् साक्षात् गोवध आदि न होकर उसके समान बताया गया कोई पापकर्म बन गया हो तो उसमें साक्षात् की हुई हत्यासे आधा फल भोगना पड़ता है। अनुकल्परूप प्रायश्चित्तसे उस हत्याका पाप यद्यपि क्षीण हो जाता है तथापि उससे पूर्णतया छुटकारा नहीं मिलता।

शुक्रने कहा—स्त्रीकी हत्या करनेपर निश्चय ही गोहत्यासे दूना पाप लगता है। स्त्रीहत्यारा हजारों वर्षोंतक कालसूत्र नामक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर वह महापापी मानव सात जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक सर्प होता है। इसके बाद उसकी शुद्धि होती है।

बृहस्पति बोले—स्त्रीहत्यासे दूना पाप लगता है ब्रह्महत्यामें। ब्रह्महत्यारा एक लाख वर्षोंतक निश्चय ही महाभयंकर कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर उस महापापीको सौ वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होना पड़ता है, इसके बाद सात जन्मोंतक सर्प होकर वह उस पापसे शुद्ध होता है।

गौतमने कहा—राजेन्द्र! कृतघ्नको ब्रह्महत्यासे चौगुना पाप लगता है। वेदमें अवश्य ही कृतघ्नोंकी शुद्धिके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है।

राजाने पूछा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! आप मुझे कृतघ्नोंका लक्षण बताइये। कृतघ्नोंके कितने भेद हैं और उनमेंसे किन्हें किस दोषकी प्राप्ति होती है?

ऋष्यशृङ्गने उत्तर दिया—सामवेदमें सोलह प्रकारके कृतघ्नोंका निरूपण किया गया है। वे सब-के-सब प्रत्येक दोषसे प्रत्येक फलके भागी होते हैं। सत्कर्म, सत्य, पुण्य, स्वधर्म, तप, प्रतिज्ञा, दान, स्वगोष्ठी-परिपालन, गुरुकृत्य, देवकृत्य, कामकृत्य, द्विजपूजन, नित्य-कृत्य, विश्वास, परधर्म और परप्रदान—इनमें स्थित हुए मनुष्योंका जो वध करता है, वह पापिष्ठ कृतघ्न कहा गया है। इनके लिये जो लोक हैं, वे उस जन्मसे भिन्न योनियोंमें उपलब्ध होते हैं। राजेन्द्र! वे पापी कृतघ्न जिन-जिन नरकोंमें जाते हैं, वे-वे नरक निश्चय ही यमलोकमें विद्यमान हैं।

सुयज्ञने पूछा—प्रभो! किस प्रकारके कृतघ्न कौन-सा कर्म करके किन-किन भयंकर नरकोंमें जाते हैं? इसे एक-एक करके मैं सुनना चाहता हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

कात्यायनने कहा—जो शपथ खाकर भी अपने सत्यको मिटा देता है, उसका पालन नहीं करता, वह कृतघ्न अवश्य ही चार युगोंतक कालसूत्र नरकमें निवास करता है। फिर सात-सात जन्मोंतक कौआ और उल्लू होकर पुनः सात जन्मोंतक महारोगी शूद्र होता है। इसके बाद उसकी शुद्धि होती है। तत्पश्चात् सर्वश्री सनन्दन, सनातन, पराशर, जरत्कारु, भरद्वाज और विभाण्डकने विभिन्न कृतघ्नोंके भेद तथा उनको प्राप्त होनेवाली दुर्गतिका वर्णन किया। तदनन्तर श्रीमार्कण्डेयजी बोले।

मार्कण्डेयने कहा—नरेश्वर! शूद्रजातीय स्त्रीके

साथ समागम करनेपर ब्राह्मणको जो दोष प्राप्त होता है, उसका वर्णन वेदोंमें किया गया है। उसे बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। जो ब्राह्मण शूद्रजातीय स्त्रीके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, वह कृतघ्नोंमें प्रधान है। उसे चौदह इन्द्रोंके स्थितिकालतक कृमिदंष्ट्र नामक नरकमें निवास करना पड़ता है। वहाँ वह ब्राह्मण कीड़ोंके काटनेसे व्याकुल रहता है। यमराजके दूत उससे प्रतिदिन तपायी हुई लोहेकी प्रतिमाका आलिङ्गन करवाते हैं। तदनन्तर निश्चय ही वह व्यभिचारिणी स्त्रीकी योनिका कीड़ा होता है। इस अवस्थामें एक हजार वर्षोंतक रहनेके बाद वह शूद्र होता है। तत्पश्चात् उसकी शुद्धि होती है।

सुयश बोले—मुने! अन्य कृतघ्नोंके भी कर्मोंका फल बताइये। यह ब्राह्मणका शाप मेरे लिये श्लाघ्य है; क्योंकि इसके कारण मुझे सत्संगका लाभ हुआ। भला, विपत्तिमें पड़े बिना किसको सम्पत्ति प्राप्त होती है। मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया; क्योंकि आज मेरे घरपर मुक्त मुनिगण और देवता पधारे हैं।

(अध्याय ५०-५१)

शेष कृतघ्नोंके कर्मफलोंका विभिन्न मुनियोंद्वारा प्रतिपादन

पार्वतीने पूछा—प्रभो! अन्य कृतघ्नोंको जिस-जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसके विषयमें उन वेद-वेदाङ्गके पारंगत विद्वानोंने क्या कहा?

श्रीमहेश्वर बोले—प्रिये! राजेन्द्र सुयज्ञके प्रश्न करनेपर उन सब मुनियोंमें महान् ऋषि नारायणने प्रवचन देना आरम्भ किया।

नारायणने कहा—भूपाल! जो अपनी या दूसरोंकी दी हुई ब्राह्मणवृत्तिका अपहरण करता है, उसे कृतघ्न समझना चाहिये। उसे जो फल मिलता है, उसको सुनो। जिनकी जीविका छिन जाती है, उन ब्राह्मणोंके आँसुओंसे धरतीके जितने धूलिकण भीगते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह 'शूलप्रोत' नामक नरकमें रहता है। दहकते हुए अंगार उसे खानेको मिलते हैं और औटाया हुआ मूत्र पीनेको। तपे हुए अंगारोंकी शय्यापर उसे सोना पड़ता है। उठनेकी चेष्टा करनेपर यमराजके दूत उन्हें पीटते हैं। उस नरकयातनाके अन्तमें वह महापापी जीव भारतवर्षमें विष्ठाका कीड़ा होता है। उस योनिमें उसे देवताके वर्षसे साठ हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तत्पश्चात् वह मानव भूमिहीन, संतानहीन, दरिद्र, कृपण, रोगी और निन्दनीय शूद्र होता है। उसके बाद उसकी शुद्धि होती है।

नारद बोले—जो नराधम अपनी अथवा परायी कीर्तिका हनन करता है, वह कृतघ्न कहा गया है। उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। नरेश्वर! वह अत्यन्त दीर्घकालतक अन्धकूप नामक नरकमें निवास करता है। उसमें सरौते-जैसे कीड़े उसे सदा काटते और खाते रहते हैं। वह पापी वहाँ तपाया हुआ खारा पानी पीता और खाता है। तदनन्तर सात जन्मोंतक सर्प और पाँच जन्मोंतक कौआ होनेके बाद वह शूद्र होता है।

देवलने कहा—जो भारतवर्षमें ब्राह्मण, गुरु अथवा देवताके धनका अपहरण करता है, उसे महान् पापी एवं कृतघ्न समझना चाहिये। वह बहुत लंबे समयतक 'अवटोद' नामक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर शराबी और शूद्र होता है। इसके बाद उसकी शुद्धि होती है।

जैगीषव्य बोले—जो पिता, माता तथा गुरुके प्रति भक्तिसे हीन होकर उनका पालन नहीं करता, उलटे वाणीद्वारा उनकी ताड़ना करता है, उसे 'कृतघ्न' कहा गया है। जो कुलटा नारी

प्रतिदिन वाणीद्वारा अपने स्वामीको ताने मारती या फटकारती है, वह 'कृतघ्नी' कही गयी है। भारतवर्षमें वह बहुत बड़ी पापिनी है। कृतघ्न पुरुष हो या स्त्री, दोनों 'वह्निकुण्ड' नामक महाघोर नरकमें पड़ते हैं। वहाँ बहुत लंबे समयतक वे अग्निमें ही वास करते हैं। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक जलौका (जोंक) होकर वह शुद्ध होता है।

वाल्मीकिने कहा—राजन्! जैसे सभी तरुओंमें सर्वत्र वृक्षत्व है, कहीं भी वृक्षत्वका त्याग नहीं है, उसी तरह सम्पूर्ण पापोंमें कृतघ्नता है। जो काम, क्रोध तथा भयके कारण झूठी गवाही देता है तथा सभामें पक्षपातपूर्वक बात करता है, वह कृतघ्न माना गया है। राजन्! जो पुण्यमात्रका हनन करता है, वह भी कृतघ्न ही है। सर्वत्र सबके पुण्यकी हानिमें कृतघ्नता निहित है। नरेश्वर! जो भारतवर्षमें झूठी गवाही देता या पक्षपातपूर्ण बात करता है, वह निश्चय ही बहुत लंबे समयतक सर्पकुण्डमें निवास करता है। सदा उसके शरीरमें साँप लिपटे रहते हैं; वह डरा रहता है और साँप उसे खाये जाते हैं। यमदूतोंकी मार पड़नेपर वह साँपोंका मल-मूत्र खानेको विवश होता है। तदनन्तर भारतमें सात-सात जन्मोंतक वह अपनी सात पीढ़ीके पूर्वजोंसहित गिरगिट और मेढक होता है। इसके बाद विशाल वनमें सेमलका वृक्ष होता है। तत्पश्चात् गूँगा मनुष्य एवं शूद्र होकर वह शुद्धि-लाभ करता है।

आस्तीक बोले—गुरुपत्नीगमन करनेपर मानव मातृगामी समझा जाता है। मातृगमन करनेपर मनुष्योंके लिये प्रायश्चित्त नहीं मिलता। नृपश्रेष्ठ! भारतवर्षमें मातृगामी पुरुषोंको जो दोष प्राप्त होता है, वह शूद्रोंको ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर लगता है। यदि ब्राह्मणी शूद्रके साथ मैथुन करे तो उसे भी उतना ही दोष प्राप्त होता है। कन्या, पुत्रवधू, सास, गर्भवती भौजाई और भगिनीके साथ समागम करनेपर भी वैसा ही दोष लगता है। राजेन्द्र! अब ब्रह्माजीके बताये अनुसार दोषका निरूपण करूँगा। जो महापापी मानव इन सबके साथ मैथुन करता है वह जीते-जी ही मृतक-तुल्य होता है, चाण्डाल एवं अस्पृश्य समझा जाता है। उसे सूर्यमण्डलके दर्शनका भी अधिकार नहीं होता। वह शालग्रामका, उनके चरणामृतका, तुलसीदलमिश्रित जलका, सम्पूर्ण तीर्थजलका तथा ब्राह्मणोंके चरणोदकका स्पर्श भी नहीं कर सकता। वह पातकी मनुष्य विष्ठाके तुल्य घृणित होता है। उसे देवता, गुरु और ब्राह्मणको नमस्कार करनेका भी अधिकार नहीं रह जाता है। उसका जल मूत्रसे भी अधिक अपवित्र होता है। भारतमें पृथ्वी उसके भारसे दब जाती है। वह उसके बोझको ढोनेमें असमर्थ हो जाती है। बेटी बेचनेवाले पापीकी भाँति गुरुपत्नीगामीके पापसे भी सारा देश पतित हो जाता है। उसके स्पर्शसे, उसके साथ वार्तालाप करनेसे, सोनेसे, एक स्थानमें रहने और साथ-साथ भोजन करनेसे मनुष्योंको पाप लगता है। वह कुम्भीपाकमें निवास करता है। वहाँ उसे दिन-रात अविरामगतिसे चक्रकी भाँति घूमना पड़ता है। वह आगकी लपटोंसे जलता और यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है। इस प्रकार वह महापापी प्रतिदिन नरक-यातना भोगता है। घोर प्राकृतिक महाप्रलय बीतनेपर जब पुनः सृष्टिका आरम्भ होता है तो वह फिर वैसा ही हो जाता है। नरक-यातनाके पश्चात् हजारों वर्षोंतक उसे विष्ठाका कीड़ा होना पड़ता है। तदनन्तर वह पत्नीहीन नपुंसक चाण्डाल होता है। तत्पश्चात् उसे सात जन्मोंतक गलित कोढ़से युक्त शूद्र एवं नपुंसक होना पड़ता है। इसके बाद वह कोढ़ी, अन्धा एवं नपुंसक ब्राह्मण होता है। इस प्रकार सात जन्म धारण करनेके पश्चात् उस महापापीकी शुद्धि होती है।

मुनि बोले—इस प्रकार हमने शास्त्रके अनुसार सब बातें बतायीं। राजन्! तुम इन विप्रवरको प्रणाम करो और निश्चय ही इन्हें अपने

घरको लौटा ले चलो। वहाँ यत्नपूर्वक ब्राह्मण-देवताका पूजन करके इनका आशीर्वाद लो। महाराज! इसके बाद शीघ्र ही वनको जाओ और तपस्या करो। ब्राह्मणके शापसे छुटकारा मिलने-पर फिर यहाँ आओगे।

पार्वति! ऐसा कहकर सब मुनि, देवता, राजा तथा बन्धुवर्गके लोग तुरंत अपने-अपने स्थानको चले गये। (अध्याय ५२)

सुतपाके द्वारा सुयज्ञको शिवप्रदत्त परम दुर्लभ महाज्ञानका उपदेश

श्रीपार्वतीजीने पूछा—प्रभो! मुनिसमूहोंके चले जानेपर मनुष्योंके कर्मफलका वर्णन सुननेके अनन्तर ब्रह्मशापसे विह्वल हुए नृपश्रेष्ठ सुयज्ञने क्या किया? अतिथि ब्राह्मणने भी क्या किया? वे लौटकर राजाके घरमें गये या नहीं, यह बतानेकी कृपा करें।

महेश्वरने कहा—प्रिये! मुनिसमूहोंके चले जानेपर वे शापग्रस्त नरेश धर्मात्मा पुरोहित वसिष्ठजीकी आज्ञासे भूतलपर ब्राह्मणके दोनों चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े। तब उन श्रेष्ठ द्विजने क्रोध छोड़कर उन्हें शुभ आशीर्वाद दिया। उन कृपामूर्ति ब्राह्मणको क्रोध छोड़कर मुस्कराते देख नृपश्रेष्ठ सुयज्ञने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए दोनों हाथ जोड़ लिये और अत्यन्त विनम्रभावसे

आत्मसमर्पण करते हुए उनसे परिचय पूछा।

राजाकी बात सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ हँसने लगे। उन्होंने मेरे दिये हुए सर्वदुर्लभ परम तत्त्वका उन्हें उपदेश दिया।

अतिथि बोले—ब्रह्माजीके पुत्र मरीचि हैं। उनके पुत्र स्वयं कश्यपजी हैं। कश्यपके प्रायः सभी पुत्र मनोवाञ्छित देवभावको प्राप्त हुए हैं। उनमें त्वष्टा बड़े ज्ञानी हुए। उन्होंने सहस्र दिव्य वर्षोंतक पुष्करमें परम दुष्कर तपस्या की। ब्राह्मण-पुत्रकी प्राप्तिके लिये देवाधिदेव परमात्मा श्रीहरिकी समाराधना की। तब भगवान् नारायणसे उन्हें एक तेजस्वी ब्राह्मण-पुत्र वरके रूपमें प्राप्त हुआ। वह पुत्र तपस्याके धनी तेजस्वी विश्वरूपके नामसे प्रसिद्ध हुआ। एक समय बृहस्पतिजी देवराजके प्रति कुपित हो जब कहीं अन्यत्र चले गये, तब इन्द्रने विश्वरूपको ही अपना पुरोहित बनाया था। विश्वरूपके मातामह दैत्य थे। अतः वे देवताओंके यज्ञमें दैत्योंके लिये भी घीकी आहुति देने लगे। जब इन्द्रको इस बातका पता लगा तो उन्होंने अपनी माताकी आज्ञा लेकर ब्राह्मण विश्वरूपके मस्तक काट दिये। नरेश्वर! विश्वरूपके पुत्र विरूप हुए, जो मेरे पिता हैं। मैं उनका पुत्र सुतपा हूँ। मेरा काश्यप गोत्र है और मैं वैरागी ब्राह्मण हूँ। महादेवजी मेरे गुरु हैं। उन्होंने ही मुझे विद्या, ज्ञान और मन्त्र दिये हैं। प्रकृतिसे परवर्ती सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण मेरे इष्टदेव हैं। मैं उन्हींके चरण-कमलोंका चिन्तन करता हूँ। मेरे मनमें सम्पत्तिके लिये कोई

इच्छा नहीं है। राधावल्लभ श्रीकृष्ण मुझे सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य और सामीप्य नामक मोक्ष देते हैं; परंतु मैं उनकी कल्याणमयी सेवाके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं लेता हूँ। ब्रह्मत्व और अमरत्वको भी मैं जलमें दिखायी देनेवाले प्रतिबिम्बकी भाँति मिथ्या मानता हूँ। नरेश्वर! भक्तिके अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या भ्रममात्र है, नश्वर है। इन्द्र, मनु अथवा सूर्यका पद भी जलमें खींची गयी रेखाके समान मिथ्या है। मैं उसे सत्य नहीं मानता। फिर राजाके पदको कौन गिनता है। सुयज्ञ! तुम्हारे यज्ञमें मुनियोंका आगमन सुनकर मेरे मनमें भी यहाँ आनेकी लालसा हुई। मैं तुम्हें विष्णुभक्तिकी प्राप्ति करानेके लिये यहाँ आया हूँ। इस समय मैंने तुमपर केवल अनुग्रह किया। तुम्हें शाप नहीं दिया। तुम एक भयानक गहरे भवसागरमें गिर गये थे। मैंने तुम्हारा उद्धार किया है। केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं है। भगवान्‌के भक्त भी तीर्थ हैं, मिट्टी और पत्थरकी प्रतिमारूप देवता ही देवता नहीं हैं, भगवद्भक्त भी देवता हैं। जलमय तीर्थ और मिट्टी-पत्थरके देवता मनुष्यको दीर्घकालमें पवित्र करते हैं; परंतु श्रीकृष्णभक्त दर्शन देनेके साथ ही पवित्र कर देते हैं।*

राजन्! निकलो इस घरसे। दे दो राज्य अपने पुत्रको। वत्स! अपनी साध्वी पत्नीकी रक्षाका भार बेटेको सौंपकर शीघ्र ही वनको चलो। भूमिपाल! ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सब कुछ मिथ्या ही है। जो सबके ईश्वर हैं, उन परमात्मा राधावल्लभ श्रीकृष्णका भजन करो। वे ध्यानसे सुलभ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके लिये भी उनकी समाराधना कठिन है। वे उत्पत्ति-विनाशशील प्राकृत पदार्थों और प्रकृतिसे भी परे हैं। जिनकी ही मायासे ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्रदेव संहार करते हैं। दिशाओंके स्वामी दिक्पाल जिनकी मायासे ही भ्रमण करते हैं, जिनकी आज्ञासे वायु चलती है, दिनेश सूर्य तपते हैं तथा निशापति चन्द्रमा सदा खेतीको सुस्निग्धता प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण विश्वोंमें सबकी मृत्यु कालके द्वारा ही होती है। काल आनेपर ही इन्द्र वर्षा करते और अग्निदेव जलाते हैं। सम्पूर्ण विश्वके शासक तथा प्रजाको संयममें रखनेवाले यम कालसे ही भयभीत-से होकर अपने कार्यमें लगे रहते हैं। काल ही समय आनेपर संहार करता है और वही यथासमय सृष्टि तथा पालन करता है। कालसे प्रेरित होकर ही समुद्र अपने देश (स्थान)-की सीमामें रहता है, पृथ्वी अपने स्थानपर स्थिर रहती है, पर्वत अपने स्थानपर रहते हैं और पाताल अपने स्थानपर। राजेन्द्र! सात स्वर्गलोक, सात द्वीपोंसहित पृथ्वी, पर्वत और समुद्रोंसहित सात पाताल—इन समस्त लोकोंसहित जो ब्रह्माण्ड है, वह अण्डेके आकारमें जलपर तैर रहा है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रहते हैं। देवता, मनुष्य, नाग, गन्धर्व तथा राक्षस आदि निवास करते हैं। राजन्! पातालसे लेकर ब्रह्मलोकतक जो अण्ड है, यही ब्रह्माजीका कृत्रिम ब्रह्माण्ड है। यह जलमें शयन करनेवाले क्षुद्र विराट् विष्णुके नाभिकमलपर उसी तरह है जैसे कमलकी कर्णिकामें बीज रहा करता है।

इस प्रकार सुविस्तृत जलशय्यापर शयन करनेवाले वे प्राकृत महायोगी क्षुद्र विराट् विष्णु भी प्रकृतिसे परवर्ती ईश्वर, सर्वात्मा, कालेश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं; उनका आधार है महाविष्णुका विस्तृत रोमकूप। महाविष्णुके अनन्त रोमकूपोंमेंसे प्रत्येकमें ऐसे-ऐसे ब्रह्माण्ड स्थित हैं। महाविष्णुके शरीरमें असंख्य रोम हैं और उन रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। अण्डाकार ब्रह्माण्डोंकी

* न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात्।
(प्रकृतिखण्ड ५३। २५-२६)

उत्पत्तिके स्थानभूत वे महाविष्णु भी सदा श्रीकृष्णकी इच्छासे प्रकृतिके गर्भसे अण्डरूपमें प्रकट होते हैं। सबके आधारभूत वे महाविष्णु भी कालके स्वामी सर्वेश्वर परमात्मा श्रीकृष्णका सदा चिन्तन किया करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें स्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि तथा महान् विराट् और क्षुद्र विराट् इन सबकी बीजरूपा जो मूलप्रकृति ईश्वरी है, वह प्रलयकालमें कालेश्वर श्रीकृष्णमें लीन होती है तथा सदा उन्हींका ध्यान किया करती है। यह सब परम दुर्लभ महाज्ञान तुम्हें बताया गया है। गुरुदेव शिवने यह ज्ञान मुझे दिया था। इसे तो तुमने सुन लिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ५३)

गोलोक एवं श्रीकृष्णकी उत्कृष्टता, कालमान एवं विभिन्न प्रलयोंका निरूपण, चौदह मनुओंका परिचय, ब्रह्मासे लेकर प्रकृतितकके श्रीकृष्णमें लय होनेका वर्णन, शिवका मृत्युञ्जयत्व, मूलप्रकृतिसे महाविष्णुका प्रादुर्भाव, सुयज्ञको विप्रचरणोदकका महत्त्व तथा राधाका मन्त्र बताकर सुतपाका जाना, पुष्करमें राजाकी दुष्कर तपस्या तथा राधामन्त्रके जपसे सुयज्ञका श्रीराधाकी कृपासे गोलोकमें जाना और श्रीकृष्णका दर्शन एवं कृपाप्रसाद प्राप्त करना

राजाने पूछा—मुनीश्वर! सभी कालसे भयभीत रहते हैं तो उनका आधार कहाँ है? कालकी माया कितनी है? क्षुद्र विराट्की आयु कितने कालकी है? ब्रह्मा, प्रकृति, मनु, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य प्राकृत जनोंकी परमायु क्या है? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! उनकी वेदोक्त आयुका भलीभाँति विचार करके मेरे समक्ष वर्णन कीजिये। महाभाग! समस्त विश्वोंके ऊर्ध्वभागमें कौन-सा लोक है? यह बताइये और मेरे संदेहका निवारण कीजिये।

मुनि बोले—राजन्! सम्पूर्ण विश्वोंके ऊर्ध्वभागमें गोलोक विद्यमान है, जो आकाशके समान विस्तृत है। वह श्रीकृष्णकी इच्छासे प्रकट हो सदा नित्य-अण्डके रूपमें प्रकाशित होता है। भूपाल! आदिसर्गमें सृष्टिके लिये उन्मुख हो अपनी कलास्वरूपा प्रकृतिके साथ संयुक्त श्रीकृष्ण जब क्रीडापरायण होकर लीलासे ही थकानका अनुभव करते हैं, उस समय उनके मुखमण्डलसे निर्गत पसीनेकी बूँदोंसे जो जलराशि प्रकट होती है, उसीके द्वारा गोलोकधाम जलसे परिपूर्ण रहता है। प्रकृतिके गर्भसे संयुक्त एवं अण्डाकारमें उत्पन्न जो विश्वके आधारभूत महाविष्णु (या महाविराट्) हैं, उनका आधार वहाँ उपर्युक्त विस्तृत गोलोकधाम ही है। अत्यन्त विस्तृत जलाधार (अथवा जलशय्या)-पर शयन करनेवाले जो महाविराट् हैं, वे श्रीराधावल्लभ श्रीकृष्णका सोलहवाँ अंश कहे गये हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है। उनके मुखपर मन्द मुसकान खेलती रहती है। उनके चार भुजाएँ हैं। वे वनमाला धारण करते हैं। श्रीमान् महाविष्णु पीताम्बरसे सुशोभित हैं। सर्वोपरि आकाशमें श्रीविष्णुका नित्य वैकुण्ठधाम है, जो आत्माकाशके समान नित्य तथा चन्द्रमण्डलके तुल्य विस्तृत है। ईश्वरकी इच्छासे उसका आविर्भाव हुआ है।

वह अलक्ष्य तथा आश्रयरहित है। आकाशके समान अत्यन्त विस्तृत तथा अमूल्य दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित है। वहाँ वनमालाधारी श्रीमान् चतुर्भुज नारायणदेव, जो लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा तथा तुलसीके पति हैं; सुनन्द, नन्द तथा कुमुद आदि पार्षदोंसे घिरे हुए निवास करते हैं।

सर्वेश्वर, सर्वसिद्धेश्वर एवं भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही दिव्य विग्रह (अथवा कृपामय शरीर) धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण दो रूपोंमें प्रकट हैं—द्विभुज एवं चतुर्भुज। चतुर्भुजरूपसे वे वैकुण्ठमें वास करते हैं और द्विभुजरूपसे गोलोकधाममें। वैकुण्ठसे पचास करोड़ योजन ऊपर गोलाकार 'गोलोक'धाम विद्यमान है, जो समस्त लोकोंसे श्रेष्ठतम है। बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित विशाल भवन उस धामकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नेन्द्रसारके बने हुए विचित्र खम्भों और सीढ़ियोंसे वे भवन अलंकृत हैं। श्रेष्ठ मणिमय दर्पणोंसे जटित किवाड़ों तथा कलशोंसे उज्ज्वल एवं नाना प्रकारके चित्रोंसे विचित्र शोभा पानेवाले शिविर उस धामकी श्रीवृद्धि करते हैं। उसका विस्तार एक करोड़ योजन है तथा लंबाई उससे सौगुनी है। विरजा नदीसे घिरा हुआ शतशृङ्ग पर्वत उस धामका परकोटा है। विरजा नदीकी आधी लंबाई-चौड़ाई तथा शतशृङ्ग पर्वतकी आधी ऊँचाईवाले वृन्दावनसे वह धाम सुशोभित है। वृन्दावनकी अपेक्षा आधी लंबाई-चौड़ाईमें निर्मित रासमण्डल गोलोकधामका अलंकार है। उपर्युक्त नदी, पर्वत और वन आदिके मध्यभागमें मुख्य गोलोकधाम है। जैसे कमलमें कर्णिका होती है, उसी प्रकार उक्त नदी, शैल आदिके बीचमें वह मनोहर धाम प्रतिष्ठित है। वहाँ रासमण्डलमें गौओं, गोपों और गोपियोंसे घिरे हुए गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण रासेश्वरी श्रीराधाके साथ निरन्तर निवास करते हैं। उनके दो भुजाएँ हैं, वे हाथोंमें मुरली लिये बाल-गोपालका रूप धारण किये रहते हैं। अग्निशुद्ध चिन्मय वस्त्र उनका परिधान है। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं। गलेमें रत्नोंका हार शोभा देता है। वे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके ऊपर रत्नमय छत्र तना हुआ है तथा उनके प्रिय सखा ग्वालबाल श्वेत चवँर लिये सदा उनकी सेवामें तत्पर रहते हैं। वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सुन्दर वेषवाली गोपियाँ माला और चन्दनके द्वारा उनका शृङ्गार करती हैं। वे मन्द-मन्द मुस्कराते रहते हैं और वे गोपियाँ कटाक्षपूर्ण चितवनसे उनकी ओर निहारती रहती हैं।

इस प्रकार जैसा मैंने भगवान् शंकरके मुखसे सुना था और आगमोंमें जैसा वर्णन मिलता है, तदनुसार लोकविस्तारकी यथाशक्ति चर्चा की है। अब कालका मान सुनो। छः पल सोनेका बना हुआ एक पात्र हो, जिसकी गहराई चार अंगुलकी हो। उसमें एक-एक माशे सोनेके बने हुए चार-

चार अंगुल लंबे चार कीलोंसे छेद कर दिये जायँ। फिर उस पात्रको जलके ऊपर रख दिया जाय। उन छिद्रोंसे पानी आकर जितनी देरमें वह पात्र भर दे, उतने समयको एक दण्ड कहते हैं। दो दण्डका एक मुहूर्त और चार मुहूर्तोंका एक प्रहर होता है। आठ प्रहरोंसे एक दिन-रातकी पूर्ति होती है। पंद्रह दिन-रातको एक पक्ष कहते हैं। दो पक्षोंका एक मास और बारह मासका एक वर्ष होता है। मनुष्योंके एक मासमें जितना समय व्यतीत होता है, वह पितरोंका एक दिन-रात है। कृष्णपक्षमें उनका दिन कहा गया है और शुक्लपक्षमें रात्रि। मनुष्योंके एक वर्षमें देवताओंके एक दिन-रातकी पूर्ति होती है। उत्तरायणमें उनका दिन होता है और दक्षिणायनमें रात्रि। नरेश्वर! मनुष्य आदिकी अवस्था युग एवं कर्मके अनुरूप होती है। अब प्रकृति, प्राकृत पदार्थ एवं ब्रह्मा आदिकी आयुका परिमाण सुनो। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारोंको एक चतुर्युग कहते हैं। इनकी काल-संख्या बारह हजार दिव्य वर्ष है। सावधान होकर सुनो, सत्ययुग आदिका कालमान क्रमशः चार, तीन, दो और एक दिव्य वर्ष है। उनकी संध्या और संध्यांशकाल दो हजार दिव्य वर्षोंके बताये गये हैं*। मनुष्योंके मानसे चारों युगोंका परिमाण तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष है। इनमें गणनाके विद्वानोंने सत्ययुगका मान मनुष्योंके वर्षसे सत्रह लाख अट्ठाईस हजार बताया है। इसी तरह त्रेताका कालमान बारह लाख छियानबे हजार मानव-वर्ष है। द्वापरका आठ लाख चौसठ हजार तथा कलियुगका चार लाख बत्तीस हजार मानव-वर्ष है।

जैसे सात वार, सोलह तिथियाँ, दिन-रात, दो पक्ष, बारह मास और वर्ष चक्रवत् घूमते रहते हैं, उसी प्रकार चारों युगोंका चक्र भी सदा ही चलता रहता है। राजेन्द्र! जैसे युग परिवर्तित होते हैं, उसी प्रकार मन्वन्तर भी। इकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। इसी क्रमसे चौदह मनु भ्रमण करते रहते हैं।

नरेश्वर! मैंने भगवान् शंकरके मुखसे धर्मात्मा मनुओंका जो आख्यान सुना है, वह बता रहा हूँ। तुम मुझसे सुनो। आदिमनु ब्रह्माजीके पुत्र हैं। इसलिये उन्हें स्वायम्भुव मनु कहा गया है। उनकी पत्नी पतिव्रता शतरूपा हैं। स्वायम्भुव मनु धर्मात्माओंमें वरिष्ठ और मनुओंमें गरिष्ठ हैं। वे तुम्हारे प्रपितामह लगते हैं। उन्होंने भगवान् शंकरका शिष्यत्व ग्रहण किया है। वे विष्णुव्रतका पालन करनेवाले जीवन्मुक्त एवं महाज्ञानी थे। उन्होंने भगवान् शंकरकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये प्रतिदिन एक लाख बहुमूल्य रत्न, दस करोड़ स्वर्णमुद्रा, सोनेके सींगसे सुशोभित एवं सुपूजित एक लाख दिव्य धेनु, अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र, एक लाख श्रेष्ठ मणि, सब प्रकारकी

* इस विषयका स्पष्टीकरण यों समझना चाहिये। सत्ययुग चार हजार दिव्य वर्षोंका होता है। युगके आरम्भमें चार सौ दिव्य वर्षोंकी संध्या होती है और युगके अन्तमें चार सौ दिव्य वर्षोंका संध्यांशकाल होता है। इस प्रकार सत्ययुगका कालमान चार हजार आठ सौ दिव्य वर्ष है। त्रेताका संध्यामान तीन सौ दिव्य वर्ष, युगमान तीन सहस्र दिव्य वर्ष और संध्यांशमान तीन सौ दिव्य वर्ष। इस तरह त्रेताका सम्पूर्ण कालमान तीन हजार छः सौ दिव्य वर्ष है। द्वापरका संध्यामान दो सौ दिव्य वर्ष, युगमान दो हजार दिव्य वर्ष और संध्यांशमान दो सौ दिव्य वर्ष है। ये सब मिलाकर दो हजार चार सौ दिव्य वर्ष होते हैं। इसी तरह कलियुगका संध्यामान एक सौ दिव्य वर्ष, युगमान एक सहस्र दिव्य वर्ष और संध्यांशमान एक सौ दिव्य वर्ष है। इस प्रकार कलियुगका पूरा मान बारह सौ दिव्य वर्ष है। इन चार युगोंका सम्मिलित कालमान बारह हजार दिव्य वर्ष है।

खेतीसे हरी-भरी भूमि, लाखों उत्तमोत्तम गजराज, सोनेके आभूषणोंसे विभूषित तीन लाख रत्न, सहस्रों स्वर्णजटित रथरत्न, एक लाख शिबिका, अन्नसे भरे हुए तीन करोड़ सुवर्णपात्र, जलसे भरे हुए तीन कोटि सुवर्ण-कलश, कर्पूर आदिसे सुवासित ताम्बूल और विश्वकर्माद्वारा रचित तथा श्रेष्ठ रत्नोंके सारभागसे खचित एवं वह्निशुद्ध विचित्र वस्त्रसहित माल्यसमूहोंसे सुशोभित तीन करोड़ विचित्र स्वर्ण-पर्यङ्कका ब्राह्मणोंके लिये दान किया था। भगवान् शंकरसे परम दुर्लभ ज्ञान, श्रीकृष्णका मन्त्र तथा श्रीहरिका दास्यभाव प्राप्त करके वे गोलोकको चले गये। अपने पुत्रको मुक्त हुआ देख प्रजापति ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने संतुष्ट होकर भगवान् शंकरकी स्तुति की और आदिमनुके स्थानपर दूसरे मनुकी सृष्टि की। वे भी स्वयम्भूके पुत्र होनेके कारण स्वायम्भुव मनु कहलाये। दूसरे मनुका नाम स्वारोचिष है। ये अग्निदेवके पुत्र हैं। राजा स्वारोचिष भी स्वायम्भुव मनुके समान ही महान् धर्मिष्ठ एवं दानी रहे हैं। दो अन्य मनु राजा प्रियव्रतके पुत्र तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। उनके नाम हैं—तापस और उत्तम। दोनों ही वैष्णव हैं तथा क्रमशः तीसरे और चौथे मनुके पदपर प्रतिष्ठित हैं। वे दोनों भी भगवान् शंकरके शिष्य हैं तथा श्रीकृष्णकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ रैवत पाँचवें मनु हैं। चाक्षुषको छठा मनु जानना चाहिये। वे भी विष्णुभक्तिमें तत्पर रहनेवाले हैं। सूर्यपुत्र श्राद्धदेव जो विष्णुके भक्त हैं, सातवें मनु कहे गये हैं (इन्हींको वैवस्वत मनु कहते हैं)। सूर्यके दूसरे वैष्णव पुत्र सावर्णि आठवें मनु हैं। विष्णुव्रतपरायण दक्षसावर्णि नवें मनु हैं। ब्रह्मज्ञानविशारद ब्रह्मसावर्णि दसवें मनु हैं। ग्यारहवें मनुका नाम धर्मसावर्णि है। वे धर्मिष्ठ, वरिष्ठ तथा सदा ही वैष्णवोंके व्रतका पालन करनेवाले हैं। ज्ञानी रुद्रसावर्णि बारहवें मनु हैं तथा धर्मात्मा देवसावर्णिको तेरहवाँ मनु कहा गया है। महाज्ञानी चन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु हैं। मनुओंकी जितनी आयु होती है, उतनी ही इन्द्रोंकी भी होती है।

ब्रह्माका एक दिन चौदह इन्द्रोंसे अविच्छिन्न कहा जाता है। जितना बड़ा उनका दिन होता है, उतनी ही बड़ी उनकी रात भी होती है। नरेश्वर! उसे ब्राह्मी निशाके नामसे जानना चाहिये। उसीको वेदोंमें 'कालरात्रि' कहा गया है। राजन्! ब्रह्माका एक दिन एक छोटा कल्प माना गया है। महातपस्वी मार्कण्डेय ऐसे ही कल्पोंसे सात कल्पतक जीवित रहते हैं। ब्रह्माका दिन बीतनेपर ब्रह्मलोकसे नीचेके सारे लोक प्रलयाग्निसे जलकर भस्म हो जाते हैं। वह अग्नि सहसा संकर्षण (शेषनाग)-के मुखसे प्रकट होती है। उस समय चन्द्रमा, सूर्य और ब्रह्माजीके पुत्रगण निश्चय ही ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। जब ब्रह्माकी रात बीत जाती है, तब वे पुनः सृष्टिका कार्य प्रारम्भ करते हैं। ब्रह्माकी रात्रिमें जो लोकोंका संहार होता है, उसे 'क्षुद्र प्रलय' कहते हैं। उसमें देवता, मनु और मनुष्य आदि दग्ध हो जाते हैं। इस प्रकार जब ब्रह्माके तीस दिन-रात व्यतीत हो जाते हैं, तब उनका एक मास पूरा होता है। वैसे ही बारह महीनोंका उनका एक वर्ष होता है। इस प्रकार ब्रह्माके पंद्रह वर्ष व्यतीत होनेपर एक प्रलय होता है, जिसे वेदोंमें 'दैनन्दिन प्रलय' कहा गया है। प्राचीन वेदज्ञोंने उसीको 'मोहरात्रि' की संज्ञा दी है। उसमें चन्द्रमा, सूर्य आदि; दिक्पाल, आदित्य, वसु, रुद्र मनु, इन्द्र, मानव, ऋषि, मुनि, गन्धर्व तथा राक्षस आदि; मार्कण्डेय, लोमश और पेचक आदि चिरजीवी; राजा इन्द्रद्युम्न, अकूपार नामक कच्छप तथा नाडीजंघ नामक बक—ये सब-के-सब नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मलोकके नीचेके सब लोक तथा नागोंके स्थान भी विनाशको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे समयमें

ब्रह्मपुत्र आदि सब लोग ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। दैनन्दिन प्रलय व्यतीत होनेपर ब्रह्माजी पुनः लोकोंकी सृष्टि आरम्भ करते हैं। इस प्रकार सौ वर्षोंतक ब्रह्माकी आयु पूरी होती है। तदनन्तर ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर एक कल्प पूरा हो जाता है। उस समय जो 'महाप्रलय' आता है, उसीको पुरातन महर्षियोंने 'महारात्रि' कहा है।

ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर ब्रह्माण्डसमूह जलमें डूब जाता है। वेदमाता सावित्री, वेद और धर्म आदि सब-के-सब तिरोहित हो जाते हैं। मृत्युका भी विनाश हो जाता है। परंतु देवी प्रकृति और भगवान् शिवका नाश नहीं होता। विश्वके वैष्णवगण भगवान् नारायणमें लीन हो जाते हैं। संहारकारी कालाग्निरुद्र समस्त रुद्रगणोंके साथ मृत्युञ्जय महादेवमें लीन हो जाते हैं। उनके साथ ही तमोगुणका भी लय हो जाता है। तदनन्तर प्रकृतिकी एक पलक गिरती है। साथ ही नारायण, शिव तथा महाविष्णुकी भी पलक गिरती है। नरेश्वर! निमेषके अन्तमें अर्थात् पलक उठनेपर श्रीकृष्णकी इच्छासे पुनः सृष्टिका आरम्भ होता है। श्रीकृष्ण निमेषसे रहित हैं। उनकी पलक नहीं गिरती है; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हैं। जो सगुण हैं, उन्हींके निमेष होता है। वह निमेष काल-संख्यात्मक अवस्थासे सीमित होता है। जो नित्य, निर्गुण, अनादि और अनन्त हैं, उनके निमेष कहाँ? जब प्रकृतिकी एक सहस्र बार पलकें गिर जाती हैं, तब उसका एक दण्ड पूरा होता है। ऐसे साठ दण्डोंका उसका एक दिन कहा गया है। तीस दिनोंका एक मास और बारह महीनोंका वर्ष होता है। ऐसे एक सौ वर्ष बीत जानेपर प्रकृतिका श्रीकृष्णमें लय होता है। श्रीकृष्णमें उसके लय होनेपर जो प्रलय होता है, उसे 'प्राकृत प्रलय' कहा गया है। महाविष्णुकी जननी वह एकमात्र मूलप्रकृति ईश्वरी सबका संहार करके स्वयं श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें विलीन हो जाती है। संतपुरुष उसीको सनातनी विष्णुमाया, सर्वशक्तिस्वरूपा दुर्गा, सती नारायणी, श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी तथा निर्गुणात्मिका कहते हैं। जिसकी मायासे बड़े-बड़े देवता मोहित होते हैं, उस देवीको वैष्णवजन महालक्ष्मी तथा 'परा राधा' कहते हैं। श्रीकृष्णके आधे अङ्गसे प्रकट हुई महालक्ष्मी नारायणकी प्रिया है। वही राधारूपसे श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी और उनकी प्राणाधिका है। शश्वत् प्रेममयी शक्ति है। निर्गुण परमात्माकी निर्गुणा प्रियतमा है।

नारायण और शिव दोनों शुद्ध-सत्त्वस्वरूपी हैं। वे अपने बहुत-से पार्षदगणोंका अपने-आपमें संहार करके निर्गुण श्रीकृष्णमें लीन हो जाते हैं। नरेश्वर! गोप, गोपियाँ और सवत्सा गौएँ सब-की-सब प्रकृतिस्वरूपा श्रीराधामें लीन हो जाती हैं और वे प्रकृतिदेवी परमेश्वर श्रीकृष्णमें। जो क्षुद्र विष्णु हैं, वे सब महाविष्णुमें लीन होते हैं। महाविष्णु प्रकृतिमें और वह श्रीकृष्णकी मूल-प्रकृति परमात्मा श्रीकृष्णमें लीन होती है। माया तथा ईश्वरकी इच्छासे प्रकृतिने योगनिद्रा बनकर श्रीकृष्णके नेत्रकमलोंमें निवास किया। जितने समयमें प्रकृतिका एक दिन होता है, उतने समयतक वृन्दावनमें परमात्मा श्रीकृष्णको नींद लगी रहती है। वहाँ बहुमूल्य रत्नोंका पर्यङ्क बिछा होता है, जो अग्निशुद्ध चिन्मय वस्त्रोंसे आच्छादित होता है। गन्ध, चन्दन और फूलोंकी वायुसे वह पर्यङ्क सुवासित रहता है। उसीपर श्यामसुन्दर शयन करते हैं। उनके पुनः जागनेपर सारी सृष्टिका कार्य आरम्भ होता है। उन निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णका वन्दन, स्मरण, ध्यान, पूजन और गुण-कीर्तन महापातकोंका नाश करनेवाला है। महाराज! मैंने मृत्युञ्जय महादेवके मुखसे जैसा सुना था और आगमोंमें जो कुछ कहा गया है, उसके अनुसार यह सब कुछ बता दिया। अब

तुम और क्या सुनना चाहते हो?

सुयज्ञने पूछा—ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर समस्त लोकोंके संहारकारी कालाग्निरुद्र, तमोगुण तथा सत्त्वगुण यदि मृत्युञ्जय शिवमें विलीन होते हैं तथा यदि उस प्राकृत लयकी बेलामें शिव निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णमें लीन होते हैं तो आपके गुरु भगवान् शिवका नाम श्रुतिमें मृत्युञ्जय क्यों रखा गया? तथा जिनके रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड निवास करते हैं, उन महाविष्णुकी जननी यह मूलप्रकृति कैसे हुई?

सुतपा बोले—नरेश्वर! ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर ब्रह्मा आदि समस्त लोकोंका संहार करनेवाली मृत्युकन्या जलबिम्बकी भाँति नष्ट हो जाती है। ऐसी कितनी ही मृत्युकन्याओं और करोड़ों ब्रह्माओंका लय हो जानेपर यथासमय भगवान् शिव सत्त्वरूपधारी निर्गुण श्रीकृष्णमें लीन होते हैं। मेरे गुरु भगवान् शिवने मृत्युकन्यापर सदा ही विजय पायी है। परंतु मृत्युने कभी शिवको पराजित नहीं किया है। यह बात प्रत्येक कल्पमें श्रुतियोंद्वारा सुनी गयी है। अतः भगवान् शिवका मृत्युञ्जय नाम उचित ही है। नरेश्वर! शम्भु, नारायण और प्रकृति—इन तीनों नित्य तत्त्वोंका नित्य परमात्मा श्रीकृष्णमें लय होना लीलामात्र है, वास्तविक नहीं है। स्वयं निर्गुण परमपुरुष परमात्मा ही कालके अनुसार सगुण होते हैं। वे स्वयं ही मायासे नारायण, शिव एवं प्रकृतिके रूपमें प्रकट होते हैं; अतः सदा उनके समान ही हैं। जैसे अग्नि और उसकी चिनगारियोंमें भेद नहीं है, वैसे ही नारायण आदि तथा श्रीकृष्णमें कोई अन्तर नहीं है। ब्रह्माजीके द्वारा प्रत्येक कल्पमें जिन-जिन रुद्र, आदित्य आदिकी सृष्टि हुई है, वे सब मृत्युकन्यासे पराजित होनेके कारण नश्वर हैं। परंतु शिवकी सृष्टि ब्रह्माजीने नहीं की है। शिव सत्य, नित्य एवं सनातन हैं। भूमिपाल! उनके निमेषमात्रमें कितने ही ब्रह्माओंका पतन हो जाता है। आदिसर्गमें जगद्गुरु श्रीकृष्णने प्रकृतिके भीतर वीर्यका आधान किया था। पवित्र वृन्दावनके भीतर रासमें उनके वामांशसे प्रकट हुई रासेश्वरी राधा ही परा प्रकृति हैं। उन्होंने ही गर्भ धारण किया। तदनन्तर समय आनेपर राधाने गोलोकके रासमण्डलमें एक अण्डको जन्म दिया। अपनी संततिको अण्डाकार देख उनके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। वे कुपित हो उठीं तथा उन्होंने उस अण्डेको वहाँसे नीचे विश्वगोलकमें फेंक दिया। उसी अण्डसे सबके आधारभूत महाविराट् (महाविष्णु)-की उत्पत्ति हुई।

सुयज्ञने कहा—प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। जीवन सार्थक हो गया। मेरे लिये आपका शाप भक्तिका कारण होनेसे वरदान बन गया। समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल करनेवाली हरि-भक्ति परम दुर्लभ है। विप्रवर! वेदोंमें जो पाँच प्रकारकी भक्ति बतायी गयी है, वह भी इसके समान नहीं है। महामुने! परमात्मा श्रीकृष्णमें जिस प्रकार भी मेरी भक्ति सम्भव हो सके, वह उपाय कीजिये; क्योंकि वह सभीके लिये परम दुर्लभ है। केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं है, मिट्टी और पत्थरकी प्रतिमारूप देवता ही देवता नहीं हैं, श्रीकृष्णभक्त ही मुख्य तीर्थ और देवता हैं। वे जलमय तीर्थ और मिट्टी-पत्थरके देवता दीर्घकालमें उपासकको पवित्र करते हैं, परंतु श्रीकृष्णभक्त दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हैं। समस्त वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी जो भारतवर्षमें रहकर स्वधर्म-पालनमें लगे रहते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो श्रीकृष्णमन्त्रका उपासक श्रीकृष्णभक्तिपरायण तथा प्रतिदिन श्रीकृष्णके नैवेद्यको भोजन करनेवाला है, वह सर्वश्रेष्ठ और महान् पवित्र है। आप वैष्णव हैं, अतः ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं। साथ ही महान् ज्ञानके श्रेष्ठ सागर हैं। मुने! आप-जैसे शिव-शिष्य महात्मा पुरुषको पाकर मैं दूसरे किसकी शरण जाऊँ? महामुने!

आपके शापसे इस समय मैं गलित कुष्ठका रोगी हूँ। अपवित्र हूँ और तपके अधिकारसे वञ्चित हूँ। ऐसी दशामें कैसे तपस्या करूँ?

सुतपा बोले—राजन्! सनातनी विष्णुमाया हरि-भक्ति प्रदान करनेवाली है। वह जिन लोगोंपर कृपा करती है, उन्हें भगवान्‌की भक्ति देती है। माया जिन्हें मोहित करती है, उन्हें हरि-भक्ति नहीं देती है, अपितु उनको नश्वर धन देकर ठग लेती है। अतः तुम प्राकृत गुणोंसे रहित कृष्णप्रेममयी शक्ति तथा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी श्रीराधाकी आराधना करो, जो सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेवाली हैं। उनके अनुग्रह एवं सेवासे शीघ्र ही गोलोकमें चले जाओगे। वे सर्वाराध्य श्रीकृष्णसे भी सेवित एवं पूजित हैं। निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्ण ध्यानसे भी वशमें न होनेवाले और दुराराध्य हैं। उनकी सेवा करके भक्त-जन सुदीर्घकाल किंवा अनेक जन्मोंके पश्चात् गोलोकमें जाते हैं। परंतु सर्वसम्पत्स्वरूपिणी श्रीराधा महाविष्णुकी भी जननी हैं, कृपामयी हैं। अतः उनका सेवन करके भक्तजन शीघ्र ही गोलोकमें चले जाते हैं। तुम एक सहस्र वर्षोंतक ब्राह्मणका चरणोदक पीते रहो। इससे कामदेवके समान रूपवान् तथा रोगहीन हो जाओगे। जबतक पृथ्वी ब्राह्मणके चरणोदकसे भीगी रहती है, तबतक उस ब्राह्मणभक्त पुरुषके पितर कमलके पत्तोंमें जल पीते हैं। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ हैं, वे सब समुद्रमें भी हैं और समुद्रमें जो तीर्थ हैं, वे सब ब्राह्मणके चरणोंमें हैं। ब्राह्मणका चरणोदक पापों तथा रोगोंका विनाश करनेवाला है। वह सम्पूर्ण तीर्थोंके जलके समान भोग तथा मोक्ष देनेवाला और शुभ है। ब्राह्मण मनुष्यके रूपमें साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन हैं। ब्राह्मणके दिये हुए पदार्थको सब देवता भोग लगाते हैं।

ऐसा कहकर ब्राह्मण सुतपा सुयज्ञके सत्कारको ग्रहण करके अपने घरको चले गये। जाते-जाते यह कह गये कि मैं एक वर्षके बाद फिर आऊँगा। शिवे! राजा प्रतिदिन भक्तिभावसे ब्राह्मणके चरणोदकका पान करने लगे। उन्होंने एक वर्षतक ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें भोजन कराया। वर्ष बीतते-बीतते राजा रोग-व्याधिसे मुक्त हो गये। फिर कश्यपकुलके अग्रणी मुनिश्रेष्ठ सुतपा वहाँ आये। उन्होंने श्रीराधाकी पूजाके विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र और सामवेदोक्त ध्यानका राजा सुयज्ञको उपदेश दिया और कहा—'राजन्! शीघ्र घर छोड़कर निकल जाओ।' ऐसा कहकर मुनि तो तपस्याके लिये चले गये और राजा तुरंत ही घर छोड़कर दुर्गम वनको चल दिये। राजाकी चारों रानियोंने प्राण त्याग दिये तथा उनका पुत्र राजा हुआ। सुयज्ञने पुष्करमें जाकर सुदुष्कर तपस्या की। उन्होंने सौ

दिव्य वर्षोंतक श्रीराधाके उत्कृष्ट मन्त्रका जप किया। तब उन्होंने आकाशमें रथपर बैठी हुई परमेश्वरी श्रीराधाके दर्शन किये। उनके दर्शनमात्रसे राजाके सारे पाप-ताप दूर हो गये। उन्होंने मनुष्यदेहको त्याग दिया और दिव्य रूप धारण कर लिया। देवी श्रीराधा उस रत्नेन्द्रनिर्मित

विमानद्वारा राजाको साथ ले गोलोकमें चली गयीं। राजाने विरजा नदी तथा मनोहर शतशृङ्ग पर्वतसे घिरे हुए, श्रीवृन्दावनसे युक्त तथा रासमण्डलसे मण्डित गोलोकका दर्शन किया। वह धाम गौओं, गोपियों और गोपसमूहोंसे सेवित तथा रत्नेन्द्रसारसे निर्मित अत्यन्त मनोहर भवनोंद्वारा सुशोभित हो रहा था। भाँति-भाँतिके चित्र-विचित्र दृश्य उसकी शोभा बढ़ाते थे तथा वह कल्पवृक्षयुक्त सैंतीस उपवनोंसे शोभायमान था। उन उपवनोंमें पारिजातके वृक्ष भी भरे हुए थे। सारा गोलोक कामधेनुओंसे आवेष्टित था। आकाशकी भाँति विपुल विस्तारसे युक्त तथा चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार था। वैकुण्ठसे पचास करोड़ योजन ऊपर वह शून्यमें बिना किसी आधारके स्थित है और भगवान्‌की इच्छासे ही सुस्थिर है। आत्माकाशके समान नित्य है और हमलोगोंके लिये भी परम दुर्लभ है। मैं, नारायण, अनन्त, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, धर्म, क्षुद्र विराट्, गङ्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, तुम (पार्वती), विष्णुमाया, सावित्री, तुलसी, गणेश, सनत्कुमार, स्कन्द, नर-नारायण ऋषि, कपिल, दक्षिणा, यज्ञ, ब्रह्मपुत्र, योगी, वायु, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, रुद्र, अग्नि तथा कृष्णमन्त्रके उपासक भारतीय वैष्णव—इन सबने ही गोलोकको देखा है। दूसरोंने इसे कभी नहीं देखा है।

उस गोलोकधाममें श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण निरामय रत्नसिंहासनपर विराजमान हैं। रत्नोंके हार, किरीट तथा रत्नमय भूषणोंसे वे विभूषित हैं। अग्निशुद्ध, अत्यन्त निर्मल चिन्मय पीताम्बर उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाता है। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं। वे किशोर गोपबालकके रूपमें दिखायी देते हैं। नूतन जलधरके समान श्याम कान्ति, श्वेत कमलके समान नेत्र, शरत्‌की पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलको तिरस्कृत करनेवाला मन्द हास्यसे सुशोभित मुख, मनोहर आकृति, दो भुजाएँ और हाथोंमें मुरली—यही उनके

रूपकी झाँकी है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही वे दिव्य विग्रह धारण करते हैं। श्रीकृष्ण स्वेच्छामय (परम स्वतन्त्र), प्रकृतिसे परे, परब्रह्मस्वरूप निर्गुण परमात्मा हैं। ध्यानसे भी वे वशमें आनेवाले नहीं हैं। उनकी आराधना बहुत कठिन है। वे हमारे लिये भी परम दुर्लभ हैं। उनके प्रिय सखा बारह ग्वालबाल सफेद चँवर लिये उनकी सेवा करते हैं। प्रेमपीडिता, सुस्थिरयौवना, वह्निशुद्ध चिन्मय वस्त्रधारिणी, रत्नभूषणभूषिता एवं परम मनोहारिणी गोपिकाएँ मन्द-मन्द मुस्कराती हुई उनकी छबि निहारती रहती हैं। रासमण्डलके मध्यभागमें परात्पर पुरुष श्रीकृष्णके राजा सुयज्ञने इसी रूपमें दर्शन किये। श्रीराधाने ही वहाँ उन्हें अपने प्राणवल्लभके दर्शन कराये थे। चारों वेद मनोहर मूर्ति धारण करके उनके दर्शन करते थे। राग-रागिनियाँ भी मूर्तिमती होकर वाद्ययन्त्र और मुखसे उन्हें अत्यन्त मनोहर संगीत सुनाती थीं। शिवे! नित्य सनातनी प्रकृतिके साथ तुम भी सदा उनके चरणारविन्दोंकी सेवा करती हो। वे तुलसीदलसे मण्डित होते हैं तथा कस्तूरी, कुङ्कुम, गन्ध, चन्दन, दूर्वा, अक्षत,

पारिजातपुष्प तथा विरजाके निर्मल जलसे उनके लिये नित्य अर्घ्य दिया जाता है। उस समय उनकी बड़ी शोभा होती है। वे सुप्रसन्न, स्वतन्त्र, समस्त कारणोंके भी कारण, सर्वान्तरात्मा, सर्वेश्वर, सर्वजीवन, सर्वाधार, परमपूज्य, सनातन ब्रह्मज्योति, सर्वसम्पत्तिस्वरूप, सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता, सर्वमङ्गलरूप, सर्वमङ्गलकारण, सर्वमङ्गलदाता तथा समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गल हैं।

श्रीकृष्णका दर्शन करके सशङ्कित हो राजा सुयज्ञ तुरंत रथसे उतर पड़े और नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुलकित शरीरसे भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक रखकर उन्होंने प्रणाम किया। परमात्मा श्रीकृष्णने राजाको अपना दासत्व, शुभाशीर्वाद तथा वह सत्य एवं अविचल श्रीकृष्णभक्ति प्रदान की, जो हमलोगोंके लिये भी परम दुर्लभ है। तदनन्तर श्रीराधा अपने रथसे उतरकर श्रीकृष्णके वक्षमें विराजमान हो गयीं। उनकी अत्यन्त प्यारी गोपियाँ सफेद चँवर लिये उनकी सेवामें लग गयीं। उनके आनेपर श्रीकृष्ण भक्ति और आदरसे सहसा उठकर खड़े हो गये। उन्होंने मन्द मुस्कानके साथ श्रीराधाके साथ वार्तालाप और उनका सम्मान किया। प्राचीनकालके वे वेदवेत्ता विद्वान् वेदोंके कथनानुसार पहले राधा नामका उच्चारण करके पीछे कृष्ण या माधव कहते हैं। जो इसके विपरीत उच्चारण करते या उन जगदम्बा श्रीकृष्णप्राणाधिका एवं प्रेममयी शक्ति श्रीराधिकाकी निन्दा करते हैं, वे चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्र नरकमें यातना भोगते हैं। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक स्त्री-पुत्रसे रहित तथा रोगी होते हैं।

दुर्गे! इस प्रकार मैंने परम उत्तम राधिकाख्यानका वर्णन किया है। वह सती भगवती वैष्णवी, सनातनी, नारायणी, विष्णुमाया, मूलप्रकृति एवं ईश्वरी नाम धारण करनेवाली तुम्हीं हो। मायाका आश्रय लेकर मुझसे पूछ रही हो। तुम स्वयं ही सर्वज्ञा, सर्वरूपिणी, स्त्रीजातिकी अधिदेवी तथा पूर्वजन्मकी बातोंको याद रखनेवाली श्रेष्ठ पराशक्ति हो। राधिकाकी कथा तो मैंने सुना दी, अब और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ५४)

श्रीराधाके ध्यान, षोडशोपचार-पूजन, परिचारिकापूजन, परिहारस्तवन, पूजन-महिमा तथा स्तुति एवं उसके माहात्म्यका वर्णन

श्रीपार्वतीने पूछा—भगवन्! आप पुरुषोंके ईश्वर श्रीकृष्णके मन्त्रके होते हुए उन वैष्णवनरेश सुयज्ञने राधाका मन्त्र क्यों ग्रहण किया? सुतपाने राजाको श्रीराधाकी पूजाका कौन-सा विधान बताया? तथा किस ध्यान, किस स्तोत्र, किस कवच और किस मन्त्रका उपदेश दिया? श्रीराधाकी पूजापद्धति क्या है? ये सब बातें बताइये।

श्रीमहेश्वर बोले—प्रिये! राजाने यह प्रश्न किया था कि 'हे विप्र! हे मुने! मैं किसका भजन करूँ? किसकी आराधनासे शीघ्र गोलोक प्राप्त कर लूँगा?' उनके ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणशिरोमणिने राजेन्द्र सुयज्ञसे कहा—'महाराज! श्रीकृष्णकी सेवासे उनके लोकको तुम बहुत जन्मोंमें प्राप्त करोगे, अतः उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी परात्परस्वरूपा श्रीराधाका भजन करो। वे कृपामयी हैं। उनके प्रसादसे साधक शीघ्र ही उनके धामको प्राप्त कर लेता है'—ऐसा कहकर मुनिने उन्हें राधाके इस षडक्षर-मन्त्रका उपदेश दिया। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ **राधायै स्वाहा**।' इसके बाद प्राणायाम, भूतशुद्धि, मन्त्रन्यास, करन्यास, अङ्गन्यास, उनके सर्व-दुर्लभ ध्यान, स्तोत्र और कवचकी भक्तिभावसे राजाको शिक्षा दी। राजाने उसी क्रमसे उस मन्त्रका जप किया। साथ ही श्रीकृष्णने पूर्वकालमें

जिस ध्यानके द्वारा श्रीराधाका चिन्तन एवं पूजन किया था, उसी सामवेदोक्त ध्यानके अनुसार उनके स्वरूपका चिन्तन किया। वह ध्यान मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलकारी है।

ध्यान—

श्रीराधाकी अङ्गकान्ति श्वेत चम्पाके समान गौर है। वे अपने अङ्गोंमें करोड़ों चन्द्रमाओंके समान मनोहर कान्ति धारण करती हैं। उनका मुख शरद्ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित करता है। दोनों नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको छीने लेते हैं। उनके श्रोणिदेश एवं नितम्बभाग बहुत ही सुन्दर हैं। अधर पके हुए बिम्बफलकी लाली धारण करते हैं। वे श्रेष्ठ सुन्दरी हैं। मुक्ताकी पंक्तियोंको तिरस्कृत करनेवाली दन्तपङ्क्ति उनके मुखकी मनोहरताको बढ़ाती है। उनके वदनपर मन्द मुस्कानजनित प्रसन्नता खेलती रहती है। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल रहती हैं। अग्निशुद्ध चिन्मय वस्त्र उनके श्रीअङ्गोंको आच्छादित करते हैं। वे रत्नोंके हारसे विभूषित हैं। रत्नमय केयूर और कंगन धारण करती हैं। रत्नोंके ही बने हुए मंजीर उनके पैरोंकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्ननिर्मित विचित्र कुण्डल उनके दोनों कानोंकी श्रीवृद्धि करते हैं। सूर्यप्रभाकी प्रतिमारूप कपोल-युगलसे वे सुशोभित होती हैं। अमूल्य रत्नोंके बने हुए कण्ठहार उनके ग्रीवा-प्रदेशको विभूषित करते हैं। उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित किरीट-मुकुट उनकी उज्ज्वलताको जाग्रत् किये रहते हैं। रत्नोंकी मुद्रिका और पाशक (चेन या पासा आदि) उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे मालतीके पुष्पों और हारोंसे अलंकृत केशपाश धारण करती हैं। वे रूपकी अधिष्ठात्री देवी हैं और गजराजकी भाँति मन्द गतिसे चलती हैं। जो

उन्हें अत्यन्त प्यारी हैं, ऐसी गोप-किशोरियाँ श्वेत चँवर लेकर उनकी सेवा करती हैं। कस्तूरीकी बेंदी, चन्दनके बिन्दु और सिन्दूरकी टीकीसे उनके मनोहर सीमन्तका निम्नभाग अत्यन्त उद्दीप्त दिखायी देता है। रासमें रासेश्वरके सहित विराजित रासेश्वरी राधाका मैं भजन करता हूँ।*

इस प्रकार ध्यान कर मस्तकपर पुष्प अर्पित करके पुनः जगदम्बा श्रीराधाका चिन्तन करे और

---

*श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्॥
सुश्रोणीं सुनितम्बां च पक्वबिम्बाधरां वराम्॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम्॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम्॥
रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन विचित्रेण विराजिताम्॥
सूर्यप्रभाप्रतिकृतिगण्डस्थलविराजिताम्॥
अमूल्यरत्ननिर्माणग्रैवेयकविभूषिताम् । सद्रत्नसारनिर्माणकिरीटमुकुटोज्ज्वलाम्॥
रत्नाङ्गुलीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम्॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषिताम् । रूपाधिष्ठातृदेवीं च गजेन्द्रमन्दगामिनीम्॥

फूल चढ़ावे। पुनः ध्यानके पश्चात् सोलह उपचार अर्पित करे। आसन, वसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, अनुलेपन, धूप, दीप, सुन्दर पुष्प, स्नानीय, रत्नभूषण, विविध नैवेद्य, सुवासित ताम्बूल, जल, मधुपर्क तथा रत्नमयी शय्या—ये सोलह उपचार हैं। राजाने इनमेंसे प्रत्येकको वेदमन्त्रके उच्चारणपूर्वक भक्तिभावसे अर्पित किया। शिवे! इन उपचारोंके समर्पणके लिये जो सर्वसम्मत मन्त्र हैं, उन्हें सुनो।

(१) आसन

रत्नसारविकारं च निर्मितं विश्वकर्मणा।
वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम्॥

राधे! पूजाके अवसरपर विश्वकर्माद्वारा रचित रमणीय श्रेष्ठ सिंहासन, जो रत्नसारका बना हुआ है, ग्रहण करो।*

(२) वसन

अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च।
वह्निशुद्धं निर्मलं च वसनं देवि गृह्यताम्॥

देवि! बहुमूल्य रत्नोंसे जटित सूक्ष्म वस्त्र, जिसका मूल्य आँका नहीं जा सकता, आपकी सेवामें प्रस्तुत है। यह अग्निसे शुद्ध किया गया, चिन्मय एवं स्वभावतः निर्मल है। इसे स्वीकार करो।

(३) पाद्य

सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम्।
पादप्रक्षालनार्थं च राधे पाद्यं च गृह्यताम्॥

राधे! उत्तम रत्नसारद्वारा निर्मित पात्रमें सम्पूर्ण तीर्थोंका शुभ जल तुम्हारी सेवामें अर्पित किया गया है। तुम्हारे दोनों चरणोंको पखारनेके लिये यह पाद्य जल है। इसे ग्रहण करो।

(४) अर्घ्य

दक्षिणावर्त्तशङ्खस्थं सद्दूर्वापुष्पचन्दनम्।
पूतं युक्तं तीर्थतोयै राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम्॥

राधे! दक्षिणावर्त शङ्खमें रखा हुआ दूर्वा, पुष्प, चन्दन तथा तीर्थजलसे युक्त यह पवित्र अर्घ्य प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करो।

(५) गन्ध

पार्थिवद्रव्यसम्भूतमतीवसुरभीकृतम्।
मङ्गलार्हं पवित्रं च राधे गन्धं गृहाण मे॥

राधे! पार्थिव द्रव्योंसे सम्भूत अत्यन्त सुगन्धित मङ्गलोपयोगी तथा पवित्र गन्ध मुझसे ग्रहण करो।

(६) अनुलेपन (चन्दन)

श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्।
सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम्॥

देवेश्वरि! कस्तूरी, कुङ्कुम और सुगन्धसे युक्त यह सुस्निग्ध चन्दनचूर्ण अनुलेपनके रूपमें तुम्हारे सामने प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करो।

(७) धूप

वृक्षनिर्यासंसंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम्।
अग्निखण्डशिखाजातं धूपं देवि गृहाण मे॥

देवि! वृक्षकी गोंद (गुग्गुल) तथा पार्थिव द्रव्योंसे संयुक्त यह धूप प्रज्वलित अग्निशिखासे निर्गत धूमके रूपमें प्रस्तुत है। मेरी इस वस्तुको ग्रहण करो।

(८) दीप

अन्धकारे भयहरममूल्यमणिशोभितम्।
रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि॥

परमेश्वरि! अमूल्य रत्नोंका बना हुआ यह परम उज्ज्वल शोभाशाली रत्नप्रदीप अन्धकार-

---

गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनबिन्दुना॥
सिन्दूरबिन्दुना चारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम्। रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे॥
(प्रकृतिखण्ड ५५। १०—१५, १९)

*आसन आदिके स्थानपर साधारण लोग पुष्प आदिका आसन तथा अन्य उपचार, जो सर्वसुलभ हैं, दे सकते हैं; परंतु मानसिक भावनाद्वारा उसे रत्नसिंहासन आदि मानकर ही अर्पित करें। इस भावनाके अनुसार ये पूजासम्बन्धी मन्त्र हैं। मानसिक भावनाद्वारा उत्तम-से-उत्तम वस्तु इष्टदेवको अर्पित की जा सकती है।

भयको दूर करनेवाला है। इसे स्वीकार करो।

(९) पुष्प

पारिजातप्रसूनं च गन्धचन्दनचर्चितम्।
अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि॥

परमेश्वरि! गन्ध और चन्दनसे चर्चित, अत्यन्त शोभायमान यह रमणीय पारिजात-पुष्प ग्रहण करो।

(१०) स्नानीय

सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम्।
विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम्॥

देवि! विष्णुतैलसे युक्त यह अत्यन्त मनोहर एवं सुस्निग्ध सुगन्धित आँवलेका चूर्ण सेवामें प्रस्तुत है। इस स्नानोपयोगी वस्तुको तुम स्वीकार करो।

(११) भूषण

अमूल्यरत्ननिर्माणं केयूरवलयादिकम्।
शङ्खं सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम॥

राधे! अमूल्य रत्नोंके बने हुए केयूर, कङ्कण आदि आभूषणोंको तथा परम शोभाशाली शङ्खकी चूड़ियोंको मेरी ओरसे ग्रहण करो।

(१२) नैवेद्य

कालदेशोद्भवं पक्वफलं च लड्डुकादिकम्।
परमान्नं च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम्॥

देवि! देश-कालके अनुसार उपलब्ध हुए पके फल तथा लड्डू आदि उत्तम मिष्टान्न नैवेद्यके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसे स्वीकार करो।

(१३) ताम्बूल और (१४) जल

ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
सर्वभोगाधिकं स्वादु सलिलं देवि गृह्यताम्॥

देवि! कर्पूर आदिसे सुवासित, सब भोगोंसे उत्कृष्ट, रमणीय एवं सुन्दर ताम्बूल तथा स्वादिष्ट जल ग्रहण करो।

(१५) मधुपर्क

अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम्।
मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि॥

परमेश्वरि! रत्नमय पात्रमें रखा हुआ यह अशन (मधुपर्क) अत्यन्त स्वादिष्ट तथा परम मनोहर है। मैंने भक्तिभावसे इसे सेवामें समर्पित किया है। कृपया स्वीकार करो।

(१६) शय्या

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्।
पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्य्यङ्कं देवि गृह्यताम्॥

देवि! श्रेष्ठ रत्नोंके सारभागसे निर्मित, अग्निशुद्ध निर्मल वस्त्रसे आच्छादित तथा पुष्प और चन्दनसे चर्चित यह शय्या प्रस्तुत है। इसे ग्रहण करो।

इस प्रकार देवी श्रीराधाका सम्यक् पूजन करके उनके लिये तीन बार पुष्पाञ्जलि दे तथा देवीकी आठ नायिकाओंका, जो उनकी परम प्रिया परिचारिकाएँ हैं, यत्नपूर्वक भक्तिभावसे पञ्चोपचार पूजन करे। प्रिये! उनके पूजनका क्रम पूर्व आदिसे आरम्भ करके दक्षिणावर्त बताया गया है। पूर्वदिशामें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें पद्मावती तथा ईशानकोणमें सुन्दरीकी पूजा करे।

व्रती पुरुष व्रतकालमें यूथिका (जूही), मालती और कमलोंकी माला चढ़ावे। तत्पश्चात् सामवेदोक्त रीतिसे परिहार नामक स्तुति करे—परिहारके मन्त्र इस प्रकार हैं—

त्वं देवी जगतां माता विष्णुमाया सनातनी।
कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी।
कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम।
पूजितासि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता॥

कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता।
रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसी कानने तु या।
चम्पावती कृष्णसङ्गे क्रीडा चम्पककानने॥
चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृंगे सतीति च।
विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे।
भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या वै काम्यके वने॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि।
क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया॥
सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी।
सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शंकरवक्षसि॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि।
कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रसूः॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी।
लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः॥
कलाकलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः।
अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे।
कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत्।
पुराकृतं स्तोत्रमेतद्भक्तिदास्यप्रदं शुभम्॥
(श्लोक ४४—५७)

श्रीराधे! तुम देवी हो। जगज्जननी सनातनी विष्णुमाया हो। श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी तथा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो। शुभस्वरूपा हो। कृष्णप्रेममयी शक्ति तथा श्रीकृष्णसौभाग्यरूपिणी हो। श्रीकृष्णकी भक्ति प्रदान करनेवाली मङ्गलदायिनी राधे! तुम्हें नमस्कार है। आज मेरा जन्म सफल है। आज मेरा जीवन सार्थक हुआ; क्योंकि श्रीकृष्णने जिसकी पूजा की है, वही देवी आज मेरे द्वारा पूजित हुई। श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें जो सर्वसौभाग्यशालिनी राधा हैं, वे ही रासमण्डलमें रासेश्वरी, वृन्दावनमें वृन्दा, गोलोकमें कृष्णप्रिया, तुलसी-काननमें तुलसी, कृष्णसंगमें चम्पावती, चम्पक-काननमें क्रीडा, चन्द्रवनमें चन्द्रावली, शतशृङ्ग पर्वतपर सती, विरजातटवर्ती काननमें विरजादर्पहन्त्री, पद्मवनमें पद्मावती, कृष्णसरोवरमें कृष्णा, कुञ्जकुटीरमें भद्रा, काम्यकवनमें काम्या, वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, नारायणके हृदयमें वाणी, क्षीरसागरमें सिन्धुकन्या, मर्त्यलोकमें हरिप्रिया लक्ष्मी, सम्पूर्ण स्वर्गमें देवदुःखविनाशिनी स्वर्गलक्ष्मी तथा शंकरके वक्षःस्थलपर सनातनी विष्णुमाया दुर्गा हैं। वही अपनी कलाद्वारा वेदमाता सावित्री होकर ब्रह्मवक्षमें विलास करती हैं। देवि राधे! तुम्हीं अपनी कलासे धर्मकी पत्नी एवं मुनि नर-नारायणकी जननी हो। तुम्हीं अपनी कलाद्वारा तुलसी तथा भुवनपावनी गङ्गा हो। गोपियाँ तुम्हारे रोमकूपोंसे प्रकट हुई हैं। रोहिणी तथा रति तुम्हारी कलाकी अंशस्वरूपा हैं। शतरूपा, शची और दिति तुम्हारी कलाकी कलांशरूपिणी हैं। देवमाता हरिप्रिया अदिति तुम्हारी कलांशरूपा हैं। शुभे! देवाङ्गनाएँ और मुनिपत्नियाँ तुम्हारी कलाकी कलासे प्रकट हुई हैं। कृष्णपूजिते! तुम मुझे श्रीकृष्णकी भक्ति और श्रीकृष्णका दास्य प्रदान करो।

इस प्रकार परिहार एवं स्तुति करके कवचका पाठ करे। यह प्राचीन शुभ स्तोत्र श्रीहरिकी भक्ति एवं दास्य प्रदान करनेवाला है।

इस प्रकार जो प्रतिदिन श्रीराधाकी पूजा करता है, वह भारतवर्षमें साक्षात् विष्णुके समान है। जीवन्मुक्त एवं पवित्र है। उसे निश्चय ही गोलोकधामकी प्राप्ति होती है। शिवे! जो प्रतिवर्ष कार्तिककी पूर्णिमाको इसी क्रमसे राधाकी पूजा करता है, वह राजसूय-यज्ञके फलका भागी होता है। इहलोकमें उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न एवं पुण्यवान् होता है और अन्तमें सब पापोंसे मुक्त हो श्रीकृष्णधाममें जाता है। पार्वति! आदिकालमें पहले श्रीकृष्णने इसी क्रमसे वृन्दावनके रासमण्डलमें श्रीराधाकी स्तुति एवं पूजा की थी। दूसरी बार

तुम्हारे वरसे वेदमाता सावित्रीको पाकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने इसी क्रमसे राधाका पूजन किया था। नारायणने भी श्रीराधाकी आराधना करके महालक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा तथा भुवनपावनी पराशक्ति तुलसीको प्राप्त किया था। क्षीरसागरशायी श्रीविष्णुने राधाकी आराधना करके ही सिन्धुसुताको प्राप्त किया था। पहले दक्षकन्याकी मृत्यु हो जानेपर मैंने भी श्रीकृष्णकी आज्ञासे पुष्करमें श्रीराधाकी पूजा की और उसके प्रभावसे तुम्हें प्राप्त किया। पतिव्रता श्रीराधाकी पूजा करके उनके दिये हुए वरसे कामदेवने रतिको, धर्मदेवने सती साध्वी मूर्तिको तथा देवताओं और मुनियोंने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षको प्राप्त किया था। इस प्रकार मैंने श्रीराधाकी पूजाका विधान बताया है। अब स्तोत्र सुनो।

एक बार श्रीराधाजी मान करके श्रीकृष्णके समीपसे अन्तर्धान हो गयीं। तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सब देवता ऐश्वर्यभ्रष्ट, श्रीहीन, भार्यारहित तथा उपद्रवग्रस्त हो गये। इस परिस्थितिपर विचार करके उन सबने भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली। उनके स्तोत्रसे संतुष्ट हुए सबके परमात्मा श्रीकृष्णने स्नान करके शुद्ध हो सती राधिकाकी पूजा करके उनका इस प्रकार स्तवन किया।

श्रीकृष्ण बोले—सुमुखि श्रीराधे! क्या मैं इसी प्रकार तुम्हारा प्रिय हूँ और मुझमें तुम्हारी प्रीति है? तुम्हारी वाणीमें जो छलना थी, वह आज अच्छी तरह प्रकट हो गयी। 'हे कृष्ण! तुम मेरे प्राण हो, जीवात्मा हो' इस तरहकी बातें जो तुम नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक कहा करती थीं, वे अब तत्काल कहाँ चली गयीं? मैं पहले तुम्हारे सामने जो कुछ कहता था, मेरा वचन आज भी ध्रुव सत्य है। 'तुम मेरे पाँचों प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हो', 'राधा मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है'—मेरी ये बातें जैसे पहले सत्य थीं, उसी तरह आज भी हैं। मैं तुम्हें अपने पास रखनेमें समर्थ न हो सका, अतः तुम्हारे बिना मेरे प्राण चले जा रहे हैं। अधिष्ठात्री देवीके बिना कौन कहाँ जीवित रह सकता है? तुम महाविष्णुकी माता, मूलप्रकृति ईश्वरी हो। अपनी कलासे तुम सगुणरूपमें प्रकट होती हो। स्वयं तो निर्गुणा (प्राकृत गुणोंसे रहित) ही हो। ज्योतिःपुञ्ज ही तुम्हारा स्वरूप है। तुम वास्तवमें निराकार हो। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही तुम रूप धारण करती हो। भक्तोंकी विभिन्न रुचिके कारण नाना प्रकारकी मूर्तियाँ ग्रहण करती हो। वैकुण्ठमें महालक्ष्मी और सरस्वतीके रूपमें तुम्हारा ही निवास है। पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें सत्पुरुषोंकी जननी भी तुम्हीं हो। सती और पार्वतीके रूपमें तुम्हारा ही प्राकट्य हुआ है। तुम्हीं पुण्यरूपा तुलसी और भुवनपावनी गङ्गा हो। ब्रह्मलोकमें सावित्रीके रूपमें तुम्हीं रहती हो। तुम्हीं अपनी कलासे वसुन्धरा हुई हो, गोलोकमें तुम्हीं समस्त गोपालोंकी अधीश्वरी राधा हो। तुम्हारे बिना मैं निर्जीव हूँ। किसी भी कर्मको करनेमें असमर्थ हूँ। तुम्हें शक्तिके रूपमें पाकर ही शिव शक्तिमान् हैं। तुम्हारे बिना वे शिव नहीं, शव हैं। तुम्हें ही वेदमाता सावित्रीके रूपमें अपने साथ पाकर साक्षात् ब्रह्माजी वेदोंके प्राकट्यकर्ता माने गये हैं। तुम लक्ष्मीका सहयोग मिलनेसे ही जगत्पालक नारायण जगत्का पालन करते हैं। तुम्हीं दक्षिणारूपसे साथ रहती हो, इसलिये यज्ञ फल देता है। पृथ्वीके रूपमें तुम्हें मस्तकपर धारण करके ही शेषनाग सृष्टिका संरक्षण करते हैं। गङ्गाधर शिव तुम्हें ही गङ्गारूपमें अपने मस्तकपर धारण करते हैं। तुमसे ही सारा जगत् शक्तिमान् है। तुम्हारे बिना सब कुछ शव-(मृतक-) के तुल्य है। तुम वाणी हो। तुम्हें पाकर ही सब लोग वक्ता बनते हैं। तुम्हारे बिना पौराणिक सूत भी मूक हो जाता है। जैसे कुम्हार सदा मिट्टीके सहयोगसे ही घड़ा बनानेमें समर्थ होता है, उसी प्रकार

तुम प्रकृतिदेवीके साथ ही मैं सृष्टि-रचनामें सफल होता हूँ। तुम्हारे बिना मैं सर्वत्र जड हूँ। कहीं भी शक्तिमान् नहीं हूँ। तुम्हीं सर्वशक्तिस्वरूपा हो। अतः मेरे निकट आओ। अग्निमें तुम्हीं दाहिकाशक्ति हो। तुम्हारे बिना अग्नि दाहकर्ममें समर्थ नहीं हैं। चन्द्रमामें तुम्हीं शोभा बनकर रहती हो। तुम्हारे बिना चन्द्रमा सुन्दर नहीं लगेगा। सूर्यमें तुम्हीं प्रभा हो। तुम्हारे बिना सूर्यदेव प्रभापूर्ण नहीं रह सकते। प्रिये! तुम्हीं रति हो। तुम्हारे बिना कामदेव कामिनियोंके प्राणवल्लभ नहीं हो सकते।

इस प्रकार श्रीराधाकी स्तुति करके जगत्प्रभु श्रीकृष्णने उन्हें प्राप्त किया। फिर तो सब देवता सश्रीक, सस्त्रीक और शक्तिसम्पन्न हो गये। गिरिराजनन्दिनि! तदनन्तर सारा जगत् सस्त्रीक हो गया। श्रीराधाकी कृपासे गोलोक गोपाङ्गनाओंसे परिपूर्ण हो गया। इसी प्रकार हरिप्रिया श्रीराधाकी स्तुति करके राजा सुयज्ञ गोलोकधाममें चले गये। जो मनुष्य श्रीकृष्णद्वारा किये गये इस राधास्तोत्रका पाठ करता है, वह श्रीकृष्णकी भक्ति और दास्यभाव प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। स्त्रीसे वियोग होनेपर जो पवित्रभावसे एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह शीघ्र ही सती, सुन्दरी और सुशीला स्त्रीको प्राप्त कर लेता है। जो भार्या और सौभाग्यसे हीन है, वह यदि एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करे तो उसे भी शीघ्र ही सुन्दरी, सुशीला एवं सती भार्याकी प्राप्ति हो जाती है। पार्वति! पूर्वकालमें जब दक्ष-कन्या सतीकी मृत्यु हो गयी थी, तब परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर मैंने इसी स्तोत्रसे श्रीराधाकी स्तुति की और तुम्हें पा लिया। पूर्वकालमें ब्रह्माजीको भी इसी स्तोत्रके प्रभावसे सावित्रीकी प्राप्ति हुई थी। पूर्वकालमें दुर्वासाके शापसे जब देवतालोग श्रीहीन हो गये, तब इसी स्तोत्रसे श्रीराधाकी स्तुति करके उन्होंने परम दुर्लभ लक्ष्मी प्राप्त की थी। पुत्रकी इच्छावाला पुरुष यदि एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करे तो उसे पुत्र प्राप्त हो जाता है। इस स्तोत्रके प्रसादसे मनुष्य बहुत बड़ी व्याधि एवं रोगोंसे मुक्त हो जाता है। जो कार्तिककी पूर्णिमाको श्रीराधाका पूजन करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह अविचल लक्ष्मीको पाता है तथा राजसूय-यज्ञके फलका भागी होता है। यदि नारी इस स्तोत्रका श्रवण करे तो वह पतिके सौभाग्यसे सम्पन्न होती है। जो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रको सुनता है, वह निश्चय ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो प्रतिदिन भक्तिभावसे श्रीराधाकी पूजा करके प्रेमपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह भवबन्धनसे मुक्त हो गोलोकधाममें जाता है। (अध्याय ५५)

श्रीजगन्मङ्गल-राधाकवच तथा उसकी महिमा

श्रीपार्वती बोलीं—श्रीराधाकी पूजाका विधान और स्तोत्र अत्यन्त अद्भुत है, उसे मैंने सुन लिया। अब राधाकवचका वर्णन कीजिये। आपकी कृपासे उसे भी सुनूँगी।

श्रीमहेश्वरने कहा—दुर्गे! सुनो। मैं परम अद्भुत राधाकवचका वर्णन आरम्भ करता हूँ। पूर्वकालमें साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णने गोलोकमें इस अति गोपनीय परम तत्त्वरूप तथा सर्वमन्त्रसमूहमय कवचका मुझसे वर्णन किया था। यह वही कवच है, जिसे धारण करके पाठ करनेसे ब्रह्माने वेदमाता सावित्रीको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। सुरेश्वरि! तुम सर्वलोकजननी हो। मुझे तुम्हारा स्वामी होनेका जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह इस कवचको धारण करनेका ही प्रभाव

है। इसीको धारण करके भगवान् नारायणने महालक्ष्मीको प्राप्त किया। इसीको धारण करनेसे प्रकृतिसे परवर्ती निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्ण पूर्वकालमें सृष्टिरचना करनेकी शक्तिसे सम्पन्न हुए। जगत्पालक विष्णुने इसीको धारण करके सिन्धुकन्याको प्राप्त किया। इसी कवचके प्रभावसे शेषनाग समस्त ब्रह्माण्डको अपने मस्तकपर सरसोंके दानेकी भाँति धारण करते हैं। इसीका आश्रय ले महाविराट् प्रत्येक रोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्डोंको धारण करते हैं और सबके आधार बने हैं। इस कवचका धारण और पाठ करनेसे धर्म सबके साक्षी और कुबेर धनाध्यक्ष हुए हैं। इसके पाठ और धारणका ही यह प्रभाव है कि इन्द्र देवताओंके स्वामी तथा मनु नरेशोंके भी सम्राट् हुए हैं। इसके पाठ और धारणसे ही श्रीमान् चन्द्रदेव राजसूय-यज्ञ करनेमें सफल हुए और सूर्यदेव तीनों लोकोंके ईश्वर-पदपर प्रतिष्ठित हो सके। इसका मनके द्वारा धारण और वाणीद्वारा पाठ करनेसे अग्निदेव जगत्को पवित्र करते हैं तथा पवनदेव मन्दगतिसे प्रवाहित हो तीनों भुवनोंको पावन बनाते हैं। इस कवचको ही धारण करनेका यह प्रभाव है कि मृत्युदेव समस्त प्राणियोंमें स्वच्छन्दगतिसे विचरते हैं। इसके पाठ और धारणसे ही सशक्त हो जमदग्निनन्दन परशुरामने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे सूनी कर दिया और कुम्भज ऋषिने समुद्रको पी लिया। इसे धारण करके ही भगवान् सनत्कुमार ज्ञानियोंके गुरु हुए हैं और नर-नारायण ऋषि जीवन्मुक्त एवं सिद्ध हो गये हैं। इसीके धारण और पठनसे ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ सिद्ध हो गये हैं। कपिल सिद्धोंके स्वामी हुए हैं। इसीके प्रभावसे प्रजापति दक्ष और भृगु मुझसे निर्भय होकर द्वेष करते हैं, कूर्म शेषको भी धारण करते हैं, वायुदेव सबके आधार हुए हैं और वरुण सबको पवित्र करनेवाले हो सके हैं। शिवे! इसीके प्रभावसे ईशान दिक्पाल और यम शासक हुए हैं। इसीका आश्रय लेनेसे काल एवं कालाग्निरुद्र तीनों लोकोंका संहार करनेमें समर्थ हो सके हैं। इसीको धारण करके गौतम सिद्ध हुए, कश्यप प्रजापतिके पदपर प्रतिष्ठित हो सके और मुनिवर दुर्वासाने अपनी पत्नीका वियोग होनेपर पूर्वकालमें देवीकी कलास्वरूपा वसुदेवकुमारी एकानंशाको प्राप्त किया। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीने रावणद्वारा हरी हुई सीताको इसी कवचके प्रतापसे प्राप्त किया। राजा नलने इसीके पाठसे सती दमयन्तीको पाया। महावीर शङ्खचूड़ इसीके प्रभावसे दैत्योंका स्वामी हुआ। दुर्गे! इसीका आश्रय लेनेसे वृषभ नन्दिकेश्वर मुझको वहन करते हैं और गरुड़ श्रीहरिके वाहन हो सके हैं। पूर्वकालके सिद्धों और मुनियोंने इसीके प्रभावसे सिद्धि प्राप्त की। इसीको धारण करके महालक्ष्मी सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेमें समर्थ हुईं। सरस्वतीको सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ तथा कामपत्नी रति क्रीड़ामें कुशल हो सकी। वेदमाता सावित्रीने इस कवचके प्रभावसे ही सिद्धि प्राप्त की। सिन्धुकन्या इसीके बलसे मर्त्यलक्ष्मी और विष्णुकी पत्नी हुईं। इसीको धारण करके तुलसी पवित्र और गङ्गा भुवनपावनी हुईं। इसका आश्रय लेकर ही वसुन्धरा सबकी आधारभूमि तथा सम्पूर्ण शस्योंसे सम्पन्न हुईं। इसको धारण करनेसे मनसादेवी विश्वपूजित सिद्धा हुईं और देवमाता अदितिने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। लोपामुद्रा और अरुन्धतीने इस कवचको धारण करके ही पतिव्रताओंमें ऊँचा स्थान प्राप्त किया तथा सती देवहूतिने इसीके प्रभावसे कपिल-जैसा पुत्र पाया। शतरूपाने जो प्रियव्रत और उत्तानपाद-जैसे पुत्र प्राप्त किये तथा तुम्हारी माता मेनाने भी जो तुम-जैसी देवी गिरिजाको पुत्रीके रूपमें पाया, वह इस कवचका ही माहात्म्य है। इस प्रकार समस्त सिद्धगणोंने राधाकवचके प्रभावसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त किये हैं।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीजगन्मङ्गलकवचस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्री छन्दः स्वयं रासेश्वरी देवता श्रीकृष्णभक्तिसम्प्राप्तौ विनियोगः।

इस जगन्मङ्गल राधाकवचके प्रजापति ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, स्वयं रासेश्वरी देवता हैं और श्रीकृष्णभक्ति-प्राप्तिके लिये इसका विनियोग बताया गया है।

जो अपना शिष्य और श्रीकृष्णभक्त ब्राह्मण हो, उसीके समक्ष इस कवचको प्रकाशित करे। जो शठ तथा दूसरेका शिष्य हो, उसको इसका उपदेश देनेसे मृत्युकी प्राप्ति होती है। प्रिये! राज्य दे दे, अपना मस्तक कटा दे; परंतु अनधिकारीको यह कवच न दे। मैंने गोलोकमें देखा था कि साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णने भक्तिभावसे अपने कण्ठमें इसको धारण किया था। पूर्वकालमें ब्रह्मा और विष्णुने भी इसे अपने गलेमें स्थान दिया था।

'**ॐ राधायै स्वाहा।**' यह मन्त्र कल्पवृक्षके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाला है और श्रीकृष्णने इसकी उपासना की है। यह मेरे मस्तककी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा।**' यह मन्त्र मेरे कपालकी तथा दोनों नेत्रों और कानोंकी सदा रक्षा करे। '**ॐ रां ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा।**' यह मन्त्रराज सदा मेरे मस्तक और केशसमूहोंकी रक्षा करे। '**ॐ रां राधायै स्वाहा।**' यह सर्वसिद्धिदायक मन्त्र मेरे कपोल, नासिका और मुखकी रक्षा करे। '**ॐ क्लीं श्रीं कृष्णप्रियायै नमः।**' यह मन्त्र मेरे कण्ठकी रक्षा करे। '**ॐ रां रासेश्वर्यै नमः।**' यह मन्त्र मेरे कंधेकी रक्षा करे। '**ॐ रां रासविलासिन्यै स्वाहा।**' यह मन्त्र मेरे पृष्ठभागकी सदा रक्षा करे। '**ॐ वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा।**' यह मन्त्र वक्षःस्थलकी सदा रक्षा करे। '**ॐ तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा।**' यह मन्त्र नितम्बकी रक्षा करे। '**ॐ कृष्णप्राणाधिकायै स्वाहा।**' यह मन्त्र दोनों चरणों तथा सम्पूर्ण अङ्गोंकी सदा सब ओरसे रक्षा करे। राधा पूर्व-दिशामें मेरी रक्षा करें। कृष्णप्रिया अग्निकोणमें मेरा पालन करें। रासेश्वरी दक्षिणदिशामें मेरी रक्षाका भार सँभालें। गोपीश्वरी नैर्ऋत्यकोणमें मेरा संरक्षण करें। निर्गुणा पश्चिम तथा कृष्णपूजिता वायव्यकोणमें मेरा पालन करें। मूलप्रकृति ईश्वरी उत्तरदिशामें निरन्तर मेरे संरक्षणमें लगी रहें। सर्वपूजिता सर्वेश्वरी सदा ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। महाविष्णु-जननी जल, स्थल, आकाश, स्वप्न और जागरणमें सदा सब ओरसे मेरा संरक्षण करें।

दुर्गे! यह परम उत्तम श्रीजगन्मङ्गलकवच मैंने तुमसे कहा है। यह गूढ़से भी परम गूढ़तर तत्त्व है। इसका उपदेश हर एकको नहीं देना चाहिये। मैंने तुम्हारे स्नेहवश इसका वर्णन किया है। किसी अनधिकारीके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। जो वस्त्र, आभूषण और चन्दनसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके इस कवचको कण्ठ या दाहिनी बाँहमें धारण करता है, वह भगवान् विष्णुके समान तेजस्वी हो जाता है। सौ लाख जप करनेपर यह कवच सिद्ध हो जाता है। यदि किसीको यह कवच सिद्ध हो जाय तो वह आगसे जलता नहीं है। दुर्गे! पूर्वकालमें इस कवचको धारण करनेसे ही राजा दुर्योधनने जल और अग्निका स्तम्भन करनेमें निश्चितरूपसे दक्षता प्राप्त की थी। मैंने पहले पुष्करतीर्थमें सूर्यग्रहणके अवसरपर सनत्कुमारको इस कवचका उपदेश दिया था। सनत्कुमारने मेरुपर्वतपर सान्दीपनिको यह कवच प्रदान किया। सान्दीपनिने बलरामजीको और बलरामजीने दुर्योधनको इसका उपदेश दिया। इस कवचके प्रसादसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकता है।*

---

*ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च । कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु॥
ॐ ह्रीं श्रीं राधिका ङेऽन्तं वह्निजायान्तमेव च । कपालं नेत्रयुग्मं च श्रोत्रयुग्मं सदावतु॥

जो राधामन्त्रका उपासक होकर प्रतिदिन इस कवचका भक्तिभावसे पाठ करता है, वह विष्णुतुल्य तेजस्वी होता तथा राजसूय-यज्ञका फल पाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, सब प्रकारका दान, सम्पूर्ण व्रतोंमें उपवास, पृथ्वीकी परिक्रमा, समस्त यज्ञोंकी दीक्षाका ग्रहण, सदैव सत्यकी रक्षा, नित्यप्रति श्रीकृष्णकी सेवा, श्रीकृष्ण-नैवेद्यका भक्षण तथा चारों वेदोंका पाठ करनेपर मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे निश्चय ही वह इस कवचके पाठसे पा लेता है। राजद्वारपर, श्मशानभूमिमें, सिंहों और व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें, दावानलमें, विशेष संकटके अवसरपर, डाकुओं और चोरोंसे भय प्राप्त होनेपर, जेल जानेपर, विपत्तिमें पड़ जानेपर, भयंकर एवं अटूट बन्धनमें बँधनेपर तथा रोगोंसे आक्रान्त होनेपर यदि मनुष्य इस कवचको धारण कर ले तो निश्चय ही वह समस्त दुःखोंसे छूट जाता है। दुर्गे! महेश्वरि! यह तुम्हारा ही कवच तुमसे कहा है। तुम्हीं सर्वरूपा माया हो और छलसे इस विषयमें मुझसे पूछ रही हो।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार राधिकाकी कथा कहकर बारंबार माधवका स्मरण करके भगवान् शंकरके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। श्रीकृष्णके समान कोई देवता नहीं है, गङ्गा-जैसी दूसरी नदी नहीं है, पुष्करके समान कोई तीर्थ नहीं है तथा ब्राह्मणसे बढ़कर कोई वर्ण नहीं है। नारद! जैसे परमाणुसे बढ़कर सूक्ष्म, महाविष्णु (महाविराट्)-से बढ़कर महान् तथा आकाशसे अधिक विस्तृत दूसरी कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार वैष्णवसे बढ़कर ज्ञानी तथा भगवान् शंकरसे बढ़कर कोई योगीन्द्र नहीं है। देवर्षे! उन्होंने ही काम, क्रोध, लोभ और मोहपर विजय पायी है। भगवान् शिव सोते, जागते हर समय श्रीकृष्णके ध्यानमें तत्पर रहते हैं। जैसे कृष्ण हैं, वैसे शिव हैं। श्रीकृष्ण और शिवमें कोई भेद नहीं है।* वत्स! जैसे वैष्णवोंमें शम्भु तथा देवताओंमें माधव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार कवचोंमें यह जगन्मङ्गल राधाकवच सर्वोत्तम है। 'शि' यह मङ्गलवाचक है

ॐ रां ह्रीं श्रीं राधिकेति ङेऽन्तं वह्निजायान्तमेव च । मस्तकं केशसंघांश्च मन्त्रराजः सदावतु ॥
ॐ रां राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च । सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम् ॥
क्लीं श्रीं कृष्णप्रिया ङेऽन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम् । ॐ रां रासेश्वरी ङेऽन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम् ॥
ॐ रां रासविलासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदावतु । वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदावतु ॥
तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम् । कृष्णप्राणाधिका ङेऽन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम् ॥
पादयुग्मं च सर्वाङ्गं संततं पातु सर्वतः । राधा रक्षतु प्राच्यां च वह्नौ कृष्णप्रियावतु ॥
दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु । पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता ॥
उत्तरे संततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी । सर्वेश्वरी सदैशान्यां पातु मां सर्वपूजिता ॥
जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा । महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु संततम् ॥
कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गूढाद् गूढतरं परम् ॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् । गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृत्वा विष्णुसमो भवेत् । शतलक्षजपेनैव सिद्धं च कवचं भवेत् ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो न दग्धो वह्निना भवेत् । एतस्मात् कवचाद् दुर्गे राजा दुर्योधनः पुरा ॥
विशारदो जलस्तम्भे वह्निस्तम्भे च निश्चितम् । मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तं च पुष्करे ॥
सूर्यपर्वणि मेरौ च स सान्दीपनये ददौ । बलाय तेन दत्तं च ददौ दुर्योधनाय सः ॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥

(प्रकृतिखण्ड ५६। ३२—४९)

* यथा कृष्णस्तथा शम्भुर्न भेदो माधवेशयोः ॥

(प्रकृतिखण्ड ५६। ६२)

और 'व' कारका अर्थ है दाता। जो मङ्गलदाता है, वही शिव कहा गया है। जो विश्वके मनुष्योंका सदा 'शं' अर्थात् कल्याण करते हैं, वे ही शंकर कहे गये हैं। कल्याणका तात्पर्य यहाँ मोक्षसे है। ब्रह्मा आदि देवता तथा वेदवादी मुनि—ये महान् कहे गये हैं। उन महान् पुरुषोंके जो देवता हैं, उन्हें महादेव कहते हैं। सम्पूर्ण विश्वमें पूजित मूलप्रकृति ईश्वरीको महती देवी कहा गया है। उस महादेवीके द्वारा पूजित देवताका नाम महादेव है। विश्वमें स्थित जितने महान् हैं, उन सबके वे ईश्वर हैं। इसलिये मनीषी पुरुष इन्हें महेश्वर कहते हैं।* ब्रह्मपुत्र नारद! तुम धन्य हो, जिसके गुरु श्रीकृष्णभक्ति प्रदान करनेवाले साक्षात् महेश्वर हैं। फिर तुम मुझसे क्यों पूछ रहे हो! (अध्याय ५६)

दुर्गाजीके सोलह नामोंकी व्याख्या, दुर्गाकी उत्पत्ति तथा उनके पूजनकी परम्पराका संक्षिप्त वर्णन

नारदजी बोले—ब्रह्मन्! मैंने अत्यन्त अद्भुत सम्पूर्ण उपाख्यानोंको सुना। अब दुर्गाजीके उत्तम उपाख्यानको सुनना चाहता हूँ। वेदकी कौथुमी शाखामें जो दुर्गा, नारायणी, ईशाना, विष्णुमाया, शिवा, सती, नित्या, सत्या, भगवती, सर्वाणी, सर्वमङ्गला, अम्बिका, वैष्णवी, गौरी, पार्वती और सनातनी—ये सोलह नाम बताये गये हैं, वे सबके लिये कल्याणदायक हैं। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारायण! इन सोलह नामोंका जो उत्तम अर्थ है, वह सबको अभीष्ट है। उसमें सर्वसम्मत वेदोक्त अर्थको आप बताइये। पहले किसने दुर्गाजीकी पूजा की है? फिर दूसरी, तीसरी और चौथी बार किन-किन लोगोंने उनका सर्वत्र पूजन किया है?

श्रीनारायणने कहा—देवर्षे! भगवान् विष्णुने वेदमें इन सोलह नामोंका अर्थ किया है, तुम उसे जानते हो तो भी मुझसे पुनः पूछते हो। अच्छा, मैं आगमोंके अनुसार उन नामोंका अर्थ कहता हूँ। दुर्गा शब्दका पदच्छेद यों है—दुर्ग+आ। 'दुर्ग' शब्द दैत्य, महाविघ्न, भवबन्धन, कर्म, शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महान् भय तथा अत्यन्त रोगके अर्थमें आता है तथा 'आ' शब्द 'हन्ता' का वाचक है। जो देवी इन दैत्य और महाविघ्न आदिका हनन करती है, उसे 'दुर्गा' कहा गया है। यह दुर्गा यश, तेज, रूप और गुणोंमें नारायणके समान है तथा नारायणकी ही शक्ति है। इसलिये 'नारायणी' कही गयी है। ईशानाका पदच्छेद इस प्रकार है—ईशान+आ। 'ईशान' शब्द सम्पूर्ण सिद्धियोंके अर्थमें प्रयुक्त होता है और 'आ' शब्द दाताका वाचक है। जो सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली है, वह देवी 'ईशाना' कही गयी है। पूर्वकालमें सृष्टिके समय परमात्मा विष्णुने मायाकी सृष्टि की थी और अपनी उस मायाद्वारा सम्पूर्ण विश्वको मोहित किया। वह मायादेवी विष्णुकी ही शक्ति है, इसलिये 'विष्णुमाया' कही गयी है। 'शिवा' शब्दका पदच्छेद यों है—शिव+आ। 'शिव' शब्द शिव एवं कल्याण-

---

*शिरिति मङ्गलार्थं च वकारो दातृवाचकः। मङ्गलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः॥
नराणां संततं विश्वे शं कल्याणं करोति यः। कल्याणं मोक्षवचनं स एव शंकरः स्मृतः॥
ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां वेदवादिनाम्। तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी। तस्या देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः॥
विश्वस्थानां च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम्। महेश्वरं च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः॥
(प्रकृतिखण्ड ५६। ६३—६७)

अर्थमें प्रयुक्त होता है तथा 'आ' शब्द प्रिय और दाता-अर्थमें। वह देवी कल्याणस्वरूपा है, शिवदायिनी है और शिवप्रिया है, इसलिये 'शिवा' कही गयी है। देवी दुर्गा सद्बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं, प्रत्येक युगमें विद्यमान हैं तथा पतिव्रता एवं सुशीला हैं। इसीलिये उन्हें 'सती' कहते हैं। जैसे भगवान् नित्य हैं, उसी तरह भगवती भी 'नित्या' हैं। प्राकृत प्रलयके समय वे अपनी मायासे परमात्मा श्रीकृष्णमें तिरोहित रहती हैं। ब्रह्मासे लेकर तृण अथवा कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् कृत्रिम होनेके कारण मिथ्या ही है, परंतु दुर्गा सत्यस्वरूपा हैं। जैसे भगवान् सत्य हैं, उसी तरह प्रकृतिदेवी भी 'सत्या' हैं। सिद्ध, ऐश्वर्य आदिके अर्थमें 'भग' शब्दका प्रयोग होता है, ऐसा समझना चाहिये। वह सम्पूर्ण सिद्ध, ऐश्वर्यादिरूप भग प्रत्येक युगमें जिनके भीतर विद्यमान है, वे देवी दुर्गा 'भगवती' कही गयी हैं। जो विश्वके सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंको जन्म, मृत्यु, जरा आदिकी तथा मोक्षकी भी प्राप्ति कराती हैं, वे देवी अपने इसी गुणके कारण 'सर्वाणी' कही गयी हैं। 'मङ्गल' शब्द मोक्षका वाचक है और 'आ' शब्द दाताका। जो सम्पूर्ण मोक्ष देती हैं, वे ही देवी 'सर्वमङ्गला' हैं। 'मङ्गल' शब्द हर्ष, सम्पत्ति और कल्याणके अर्थमें प्रयुक्त होता है। जो उन सबको देती हैं, वे ही देवी 'सर्वमङ्गला' नामसे विख्यात हैं। 'अम्बा' शब्द माताका वाचक है तथा वन्दन और पूजन-अर्थमें भी 'अम्ब' शब्दका प्रयोग होता है। वे देवी सबके द्वारा पूजित और वन्दित हैं तथा तीनों लोकोंकी माता हैं, इसलिये 'अम्बिका' कहलाती हैं। देवी श्रीविष्णुकी भक्ता, विष्णुरूपा तथा विष्णुकी शक्ति हैं। साथ ही सृष्टिकालमें विष्णुके द्वारा ही उनकी सृष्टि हुई है। इसलिये उनकी 'वैष्णवी' संज्ञा है। 'गौर' शब्द पीले रंग, निर्लिप्त एवं निर्मल परब्रह्म परमात्माके अर्थमें प्रयुक्त होता है। उन 'गौर' शब्दवाच्य परमात्माकी वे शक्ति हैं, इसलिये वे 'गौरी' कही गयी हैं। भगवान् शिव सबके गुरु हैं और देवी उनकी सती-साध्वी प्रिया शक्ति हैं। इसलिये 'गौरी' कही गयी हैं। श्रीकृष्ण ही सबके गुरु हैं और देवी उनकी माया हैं। इसलिये भी उनको 'गौरी' कहा गया है। 'पर्व' शब्द तिथिभेद (पूर्णिमा), पर्वभेद, कल्पभेद तथा अन्यान्य भेद अर्थमें प्रयुक्त होता है तथा 'ती' शब्द ख्यातिके अर्थमें आता है। उन पर्व आदिमें विख्यात होनेसे उन देवीकी 'पार्वती' संज्ञा है। 'पर्वन्' शब्द महोत्सव-विशेषके अर्थमें आता है। उसकी अधिष्ठात्री देवी होनेके नाते उन्हें 'पार्वती' कहा गया है। वे देवी पर्वत (गिरिराज हिमालय)-की पुत्री हैं। पर्वतपर प्रकट हुई हैं तथा पर्वतकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसलिये भी उन्हें 'पार्वती' कहते हैं।' 'सना'का अर्थ है सर्वदा और 'तनी'का अर्थ है विद्यमाना। सर्वत्र और सब कालमें विद्यमान होनेसे वे देवी 'सनातनी' कही गयी हैं।

महामुने! आगमोंके अनुसार सोलह नामोंका अर्थ बताया गया। अब देवीका वेदोक्त उपाख्यान सुनो। पहले-पहल परमात्मा श्रीकृष्णने सृष्टिके आदिकालमें गोलोकवर्ती वृन्दावनके रासमण्डलमें देवीकी पूजा की थी। दूसरी बार मधु और कैटभसे भय प्राप्त होनेपर ब्रह्माजीने उनकी पूजा की। तीसरी बार त्रिपुरारि महादेवने त्रिपुरसे प्रेरित होकर देवीका पूजन किया था। चौथी बार पहले दुर्वासाके शापसे राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हुए देवराज इन्द्रने भक्तिभावके साथ देवी भगवती सतीकी समाराधना की थी। तबसे मुनीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों, देवताओं तथा श्रेष्ठ महर्षियोंद्वारा सम्पूर्ण विश्वमें सब ओर और सदा देवीकी पूजा होने लगी।

मुने! पूर्वकालमें सम्पूर्ण देवताओंके तेजःपुञ्जसे देवी प्रकट हुई थीं। उस समय सब देवताओंने अस्त्र-शस्त्र और आभूषण दिये थे। उन्हीं दुर्गादेवीने दुर्ग आदि दैत्योंका वध किया

और देवताओंको अभीष्ट वरके साथ स्वराज्य दिया। दूसरे कल्पमें महात्मा राजा सुरथने, जो मेधस् ऋषिके शिष्य थे, सरिताके तटपर मिट्टीकी मूर्तिमें देवीकी पूजा की थी। उन्होंने वेदोक्त सोलह उपचार अर्पित करके विधिवत् पूजन और ध्यानके पश्चात् कवच धारण किया तथा परिहार नामक स्तुति करके अभीष्ट वर पाया। इसी तरह उसी सरिताके तटपर उसी मृण्मयी मूर्तिमें एक वैश्यने भी देवीकी पूजा करके मोक्ष प्राप्त किया। राजा और वैश्यने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए दोनों हाथ जोड़कर देवीकी स्तुति की और उनकी उस मृण्मयी प्रतिमाका नदीके निर्मल गम्भीर जलमें विसर्जन कर दिया। वैसी मृण्मयी प्रतिमाको जलमग्न हुई देख राजा और वैश्य दोनों रो पड़े और वहाँसे अन्यत्र चले गये। वैश्यने देह त्याग करके जन्मान्तरमें पुष्करतीर्थमें दुष्कर तपस्या की और दुर्गादेवीके वरदानसे वे गोलोकधाममें चले गये। राजा अपने निष्कण्टक राज्यको लौट गये और वहाँ सबके आदरणीय होकर बलपूर्वक शासन करने लगे। उन्होंने साठ हजार वर्षोंतक राज्य भोग किया। तत्पश्चात् अपनी पत्नी तथा राज्यका भार पुत्रको सौंपकर वे कालयोगसे पुष्करमें तप करके दूसरे जन्ममें सावर्णि मनु हुए। वत्स! मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आगमोंके अनुसार दुर्गोपाख्यानका संक्षेपसे वर्णन किया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर भगवान् नारायणने ताराकी कथा कही और चैत्रतनय राजा अधिरथसे राजा सुरथकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाया।

(अध्याय ५७—६१)

सुरथ और समाधि वैश्यका मेधस्के आश्रमपर जाना, मुनिका दुर्गाकी महिमा एवं उनकी आराधना-विधिका उपदेश देना तथा दुर्गाकी आराधनासे उन दोनोंके अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति

तदनन्तर नारदजीके प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवान् नारायण बोले—ध्रुवके पौत्र तथा उत्कलके पुत्र बलवान् नन्दि स्वायम्भुव मनुके वंशमें सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय राजा थे। उन्होंने सौ अक्षौहिणी सेना लेकर महामति सुरथके राज्यको चारों ओरसे घेर लिया। नारद! दोनों पक्षोंमें पूरे एक वर्षतक निरन्तर युद्ध होता रहा। अन्तमें चिरंजीवी वैष्णवनरेश नन्दिने सुरथपर विजय पायी। नन्दिने उन्हें राज्यसे बाहर कर दिया। भयभीत राजा सुरथ रातमें अकेले घोड़ेपर सवार हो गहन वनमें चले गये। वहाँ भद्रा नदीके तटपर उनकी एक वैश्यसे भेंट हुई। मुने! उन दोनोंने परस्पर बन्धुभावकी स्थापना की और उनमें बड़ा प्रेम हो गया। राजा वैश्यके साथ मेधस्के आश्रमपर गये। भारतमें सत्पुरुषोंके लिये जो दुष्कर पुण्यक्षेत्र है, उस पुष्करमें जाकर राजाने उन महातेजस्वी मुनिका दर्शन किया। मेधस्जी अपने शिष्योंको परम दुर्लभ ब्रह्मतत्त्वका उपदेश दे रहे थे। राजा और वैश्यने मस्तक झुकाकर उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम किया। मुनिने उन दोनों अतिथियोंका आदर किया और उन्हें शुभाशीर्वाद दिया। फिर पृथक्-पृथक् उन दोनोंका कुशल-मङ्गल, जाति और नाम पूछा। राजा सुरथने उन मुनीश्वरको क्रमशः उनके प्रश्नोंका उत्तर दिया।

सुरथ बोले—ब्रह्मन्! मैं राजा सुरथ हूँ। मेरा जन्म चैत्रवंशमें हुआ है। इस समय बलवान् राजा नन्दिने मुझे अपने राज्यसे निकाल दिया है। अब मैं कौन उपाय करूँ? किस प्रकार पुनः अपने राज्यपर मेरा अधिकार हो? यह आप बतावें। महाभाग मुने! मैं आपकी ही शरणमें आया हूँ।

यह समाधि नामक वैश्य है और बड़ा धर्मात्मा है; तथापि दैववश इसके स्त्री-पुत्रोंने धनके लोभसे इसको घरसे बाहर निकाल दिया है। इसका अपराध इतना ही है कि यह स्त्री, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके मना करनेपर भी प्रतिदिन ब्राह्मणोंको प्रचुर धन और रत्न दानमें दिया करता था। इसीसे क्रोधमें आकर उन लोगोंने इसे घरसे निकाल दिया। फिर शोकके कारण वे पुनः इसका अन्वेषण करते हुए आये। परंतु यह पवित्र, ज्ञानी एवं विरक्त वैश्य उनके आग्रह करनेपर भी घरको नहीं लौटा। तब इसके पुत्र भी पितृशोकसे संतप्त हो सब कर्मोंसे विरक्त हो गये और सारा धन ब्राह्मणोंको देकर घर छोड़ वनको चले गये। 'श्रीहरिका परम दुर्लभ दास्य प्राप्त हो'—यही इस वैश्यका अभीष्ट मनोरथ है। इस निष्काम वैश्यको वह अभीष्ट वस्तु कैसे प्राप्त होगी? यह बात आप विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

श्रीमेधस्‌ने कहा—राजन्! निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञासे दुर्लङ्घ्य त्रिगुणमयी विष्णुमाया सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायासे आच्छन्न कर देती है। वह कृपामयी देवी जिन धर्मात्मा पुरुषोंपर कृपा करती है, उन्हें दया करके परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-भक्ति प्रदान करती है। नरेश्वर! परंतु जिन मायावी पुरुषोंपर विष्णुमाया दया नहीं करती है, उन दुर्गतिग्रस्त जीवोंको मायाद्वारा ही मोहजालसे बाँध देती है। फिर तो वे बर्बर जीव इस नश्वर एवं अनित्य संसारमें सदा नित्यबुद्धि कर लेते हैं और परमेश्वरकी उपासना छोड़कर दूसरे-दूसरे देवताओंकी सेवामें लग जाते हैं तथा उन्हीं देवताओंके मन्त्रका जप करते हैं। लोभवश मनमें किसी मिथ्या निमित्तको स्थान देकर वे इस तरह भटक जाते हैं। अन्य देवता भी श्रीहरिकी कलाएँ हैं। उनका सात जन्मोंतक सेवन करनेके पश्चात् वे देवी प्रकृतिकी कृपासे उनकी आराधनामें संलग्न होते हैं। सात जन्मोंतक कृपामयी विष्णुमायाकी सेवा करनेके बाद उन्हें सनातन ज्ञानानन्दस्वरूप शिवकी भक्ति प्राप्त होती है। भगवान् शंकर श्रीहरिके ज्ञानके अधिष्ठाता देवता हैं। उनका सेवन करके मनुष्य शीघ्र ही उनसे श्रीविष्णु-भक्ति प्राप्त कर लेते हैं। तब उनके द्वारा सत्त्वस्वरूप सगुण विष्णुकी सेवा होने लगती है। इससे उनको परम निर्मल ज्ञानका साक्षात्कार होता है। सगुण विष्णुकी आराधनाके पश्चात् सात्त्विक वैष्णव मानव प्रकृतिसे परवर्ती निर्गुण श्रीकृष्णकी भक्ति पाते हैं। तदनन्तर वे साधु पुरुष श्रीकृष्णके निरामय मन्त्रको ग्रहण करते हैं और उन निर्गुण देवकी आराधनासे स्वयं निर्गुण हो जाते हैं। वे वैष्णव पुरुष निरामय गोलोकमें रहकर निरन्तर भगवान्‌का दास्य-(कैंकर्य-)मय सेवन करते हैं और अपनी आँखोंसे अगणित ब्रह्माओंका पतन (विनाश) देखते हैं। जो श्रेष्ठ मानव श्रीकृष्णभक्तसे उनके मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण करता है, वह अपने पूर्वजोंकी सहस्रों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। इतना ही नहीं, वह नानाके कुलकी सहस्रों पीढ़ियोंका, माताका तथा दास आदिका भी उद्धार करके गोलोकमें चला जाता है। महाभयंकर भवसागरमें कर्णधाररूपिणी दुर्गा श्रीकृष्ण-भक्तिरूपी नौकाद्वारा उन सबको पार कर देती है। वैष्णवोंके कर्म-बन्धनका उच्छेद करनेके लिये परमात्मा श्रीकृष्णकी वह वैष्णवी शक्ति तीखे शस्त्रका काम करती है। नरेश्वर! उस शक्तिकी शक्ति भी दो प्रकारकी है। एक विवेचनाशक्ति और दूसरी आवरणी शक्ति। पहली अर्थात् विवेचनाशक्ति तो वह भक्तोंको देती है और दूसरी आवरणी शक्ति अभक्तके पल्ले बाँधती है। भगवान् श्रीकृष्ण सत्यस्वरूप हैं। उनसे भिन्न सारा जगत् नश्वर है। विवेचना-बुद्धि नित्यरूपा एवं सनातनी है। यह मेरी श्री है। यही वैष्णव भक्तोंको प्राप्त होती है। किंतु आवरणी बुद्धि कर्मोंका फल भोगनेवाले अधम अवैष्णव पुरुषोंको

प्राप्त हुआ करती है। राजन्! मैं प्रचेताका पुत्र और ब्रह्माजीका पौत्र हूँ तथा भगवान् शंकरसे ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा श्रीकृष्णका भजन करता हूँ। महाराज! नदीके तटपर जाओ और सनातनी दुर्गाका भजन करो। तुम्हारे मनमें राज्यकी कामना है, इसलिये वे देवी तुम्हें आवरणी बुद्धि प्रदान करेंगी तथा इस निष्काम वैष्णव वैश्यको वे कृपामयी वैष्णवीदेवी शुद्ध विवेचना-बुद्धि देंगी।

ऐसा कहकर कृपानिधान मुनिवर मेधस्‌ने उन दोनोंको दुर्गाजीकी पूजाकी विधि, स्तोत्र, कवच और मन्त्रका उपदेश दिया। वैश्यने उन कृपामयी देवीकी आराधना करके मोक्ष प्राप्त किया तथा राजाको अपना अभीष्ट राज्य, मनुका पद और मनोवाञ्छित परम ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार मैंने सुखद, सारभूत एवं मोक्षदायक परम उत्तम दुर्गाका उपाख्यान पूर्णरूपसे सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ६२)

सुरथ और समाधिपर देवीकी कृपा और वरदान, देवीकी पूजाका विधान, ध्यान, प्रतिमाकी स्थापना, परिहारस्तुति, शङ्खमें तीर्थोंका आवाहन तथा देवीके षोडशोपचार-पूजनका क्रम

नारदजीने पूछा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग नारायण! अब कृपया यह बताइये कि राजाने किस प्रकारसे पराप्रकृतिका सेवन किया था? समाधि नामक वैश्यने भी किस प्रकार प्रकृतिका उपदेश पाकर निर्गुण एवं निष्काम परमात्मा श्रीकृष्णको प्राप्त किया था। उनकी पूजाका विधान, ध्यान, मन्त्र, स्तोत्र अथवा कवच क्या है? जिसका उपदेश महामुनि मेधस्‌ने राजा सुरथको दिया था। समाधि वैश्यको देवी प्रकृतिने कौन-सा उत्तम ज्ञान दिया था? किस उपायसे उन दोनोंको सहसा प्रकृतिदेवीका साक्षात्कार प्राप्त हुआ था? वैश्यने ज्ञान पाकर किस दुर्लभ पदको प्राप्त किया था? अथवा राजाकी क्या गति हुई थी? उसे मैं सुनना चाहता हूँ।

श्रीनारायणने कहा—मुने! राजा सुरथ और समाधि वैश्यने मेधस् मुनिसे देवीका मन्त्र, स्तोत्र, कवच, ध्यान तथा पुरश्चरण-विधि प्राप्त करके पुष्करतीर्थमें उत्तम मन्त्रका जप आरम्भ कर दिया। वे एक वर्षतक त्रिकाल स्नान करके देवीकी समाराधनामें लगे रहे, फिर दोनों शुद्ध हो गये। वहीं उन्हें मूलप्रकृति ईश्वरीके साक्षात् दर्शन हुए। देवीने राजाको राज्यप्राप्तिका वर दिया। भविष्यमें मनुके पद और मनोवाञ्छित सुखकी प्राप्तिके लिये आश्वासन दिया। परमात्मा श्रीकृष्णने भगवान् शंकरको जो पूर्वकालमें ज्ञान दिया था, वही परम दुर्लभ गूढ़ ज्ञान देवीने वैश्यको दिया। कृपामयी देवी उपवाससे अत्यन्त क्लेश पाते हुए वैश्यको निश्चेष्ट तथा श्वासरहित हुआ देख उसे गोदमें उठाकर दुःख करने लगीं और बार-बार कहने लगीं—'बेटा! होशमें आओ।' चैतन्यरूपिणी देवीने स्वयं ही उसे चेतना दी। उस चेतनाको पाकर वैश्य होशमें आया और प्रकृतिदेवीके सामने रोने लगा। अत्यन्त कृपामयी देवी उसपर प्रसन्न हो कृपापूर्वक बोलीं।

श्रीप्रकृतिने कहा—बेटा! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसके लिये वर माँगो। अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मत्व, अमरत्व, इन्द्रत्व, मनुत्व और सम्पूर्ण सिद्धियोंका संयोग, जो चाहो, ले लो। मैं तुम्हें बालकोंको बहलानेवाली कोई नश्वर वस्तु नहीं दूँगी।

वैश्य बोला—माँ! मुझे ब्रह्मत्व या अमरत्व पानेकी इच्छा नहीं है। उससे भी अत्यन्त दुर्लभ

कौन-सी वस्तु है? यह मैं स्वयं ही नहीं जानता। यदि कोई ऐसी वस्तु हो तो वही मेरे लिये अभीष्ट है। अब मैं तुम्हारी ही शरणमें आया हूँ, तुम्हें जो अभीष्ट हो, वही मुझे दे दो। मुझे ऐसा वर देनेकी कृपा करो, जो नश्वर न हो और सबका सार-तत्त्व हो।

श्रीप्रकृतिने कहा—बेटा! मेरे पास तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। जो वस्तु मुझे अभीष्ट है, वही मैं तुम्हें दूँगी, जिससे तुम परम दुर्लभ गोलोकधाममें जाओगे। महाभाग वत्स! जो देवर्षियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है, वह सबका सारभूत ज्ञान ग्रहण करो और श्रीहरिके धाममें जाओ। भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण, वन्दन, ध्यान, पूजन, गुण-कीर्तन, श्रवण, भावन, सेवा और सब कुछ श्रीकृष्णको समर्पण—यह वैष्णवोंकी नवधा भक्तिका लक्षण है। यह भक्ति जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा यम-यातनाका नाश करनेवाली है।* जो नवधा भक्तिसे हीन, अधम एवं पापी हैं, उन लोगोंकी सूर्यदेव सदा आयु ही हरते रहते हैं। जो भक्त हैं और भगवान्‌में जिनका चित्त लगा हुआ है, ऐसे वैष्णव चिरजीवी, जीवन्मुक्त, निष्पाप तथा जन्मादि विकारोंसे रहित होते हैं। शिव, शेषनाग, धर्म, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, सनत्कुमार, कपिल, सनक, सनन्दन, वोढु, पञ्चशिख, दक्ष, नारद, सनातन, भृगु, मरीचि, दुर्वासा, कश्यप, पुलह, अङ्गिरा, मेधस्, लोमश, शुक्र, वसिष्ठ, क्रतु, बृहस्पति, कर्दम, शक्ति, अत्रि, पराशर, मार्कण्डेय, बलि, प्रह्लाद, गणेश्वर, यम, सूर्य, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, अकूपार, उलूक, नाडीजङ्घ, वायुपुत्र हनुमान्, नर, नारायण, कूर्म, इन्द्रद्युम्न और विभीषण—ये परमात्मा श्रीकृष्णकी नवधा भक्तिसे युक्त महान् 'धर्मिष्ठ' भक्तशिरोमणि हैं। वैश्यराज! जो भगवान् श्रीकृष्णके भक्त हैं, वे उन्हींके अंश हैं तथा सदा जीवन्मुक्त रहते हैं। इतना ही नहीं, वे भूमण्डलके समस्त तीर्थोंके पापोंका अपहरण करनेमें समर्थ हैं। ऊपर सात स्वर्ग हैं, बीचमें सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी है और नीचे सात पाताल हैं। ये सब मिलकर 'ब्रह्माण्ड' कहलाते हैं। बेटा! ऐसे विश्व-ब्रह्माण्डोंकी कोई गणना नहीं है। प्रत्येक विश्वमें पृथक्-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, देवर्षि, मनु और मानव आदि हैं। सम्पूर्ण आश्रम भी हैं। सर्वत्र मायाबद्ध जीव रहते हैं। जिन महाविष्णुके रोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्ड वास करते हैं, उन्हें महाविराट् कहते हैं। वे परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंश हैं। सबके अभीष्ट आत्मा श्रीकृष्ण सत्य, नित्य, परब्रह्मस्वरूप, निर्गुण, अच्युत, प्रकृतिसे परे एवं परमेश्वर हैं। तुम उनका भजन करो। वे निरीह, निराकार, निर्विकार, निरञ्जन, निष्काम, निर्विरोध, नित्यानन्द और सनातन हैं। स्वेच्छामय (स्वतन्त्र) तथा सर्वरूप हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही वे दिव्य शरीर धारण करते हैं। परम तेजः-स्वरूप तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। ध्यानके द्वारा उन्हें वशमें कर लिया जाय, यह असम्भव है। शिव आदि योगियोंके लिये भी उनकी आराधना कठिन है। वे सर्वेश्वर, सर्वपूज्य, सबकी सम्पूर्ण कामनाओंके दाता, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सबको आनन्द प्रदान करनेवाले, सम्पूर्ण धर्मोंके दाता, सर्वरूप, प्राणरूप, सर्वधर्मस्वरूप, सर्वकारणकारण, सुखद, मोक्षदायक, साररूप, उत्कृष्ट रूपसम्पन्न, भक्तिदायक, दास्यप्रदायक तथा सत्पुरुषोंको सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले हैं। उनसे भिन्न सारा कृत्रिम जगत् नश्वर है।

---

*स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम्। श्रवणं भावनं सेवा कृष्णे सर्वनिवेदनम्॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम्। जन्ममृत्युजराव्याधियमताडनखण्डनम्॥
(प्रकृतिखण्ड ६३। १९-२०)

वे परात्परतर शुद्ध, परिपूर्णतम एवं शिवरूप हैं। बेटा! तुम सुखपूर्वक उन्हीं भगवान् अधोक्षजकी शरण लो। 'कृष्ण' यह दो अक्षरोंका मन्त्र श्रीकृष्णदास्य प्रदान करनेवाला है। तुम इसे ग्रहण करो और दुष्कर सिद्धिकी प्राप्ति करानेवाले पुष्करतीर्थमें जाकर इस मन्त्रका दस लाख जप करो। दस लाखके जपसे ही तुम्हारे लिये यह मन्त्र सिद्ध हो जायगा।

ऐसा कहकर भगवती प्रकृति वहीं अन्तर्धान हो गयीं। मुने! उन्हें भक्तिभावसे नमस्कार करके समाधि वैश्य पुष्करतीर्थमें चला गया। पुष्करमें दुष्कर तप करके उसने परमेश्वर श्रीकृष्णको प्राप्त कर लिया। भगवती प्रकृतिके प्रसादसे वह श्रीकृष्णका दास हो गया।

भगवान् नारायण कहते हैं—महाभाग नारद! राजा सुरथने जिस क्रमसे देवी परा प्रकृतिकी आराधना की थी, वह वेदोक्त क्रम बता रहा हूँ, सुनो। महाराज सुरथने स्नान करके आचमन किया। फिर त्रिविध न्यास, करन्यास, अङ्गन्यास तथा मन्त्राङ्गन्यास करके भूतशुद्धि की। इसके बाद प्राणायाम करके शङ्ख-शोधनके अनन्तर देवीका ध्यान किया और मिट्टीकी प्रतिमामें उनका आवाहन किया। फिर भक्तिभावसे ध्यान करके प्रेमपूर्वक उनका पूजन किया। देवीके दाहिने भागमें लक्ष्मीकी स्थापना करके परम धार्मिक नरेशने उनकी भी भक्तिभावसे पूजा की। नारद! तत्पश्चात् देवीके सामने कलशपर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छः देवताओंका आवाहन करके राजाने विधिपूर्वक भक्तिसे उनका पूजन किया। प्रत्येक विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह पूर्वोक्त छः देवताओंकी पूजा और वन्दना करके महादेवीका प्रेमपूर्वक निम्नाङ्कित रीतिसे ध्यान करे। मुने! सामवेदमें जो ध्यान बताया गया है, वह परम उत्तम तथा कल्पवृक्षके समान वाञ्छापूरक है।

ध्यान

मूलप्रकृति ईश्वरी महादेवीका नित्य ध्यान करे। वे सनातनी देवी ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके लिये भी पूजनीया तथा वन्दनीया हैं। उन्हें नारायणी और विष्णुमाया कहते हैं। वे वैष्णवीदेवी विष्णुभक्ति देनेवाली हैं। यह सब कुछ उनका ही स्वरूप है। वे सबकी ईश्वरी, सबकी आधारभूता, परात्परा, सर्वविद्यारूपिणी, सर्वमन्त्रमयी तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। वे सगुणा और निर्गुणा हैं। सत्यस्वरूपा, श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी एवं सती हैं। महाविष्णुकी जननी हैं। श्रीकृष्णके आधे अङ्गसे प्रकट हुई हैं। कृष्णप्रिया, कृष्णशक्ति एवं कृष्णबुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्णने उनकी स्तुति, पूजा और वन्दना की है। वे कृपामयी हैं। उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है। उनकी प्रभा करोड़ों सूर्योंकी दीप्तिको भी लज्जित करती है। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द-मन्द हास्यकी छटा छायी हुई है। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल हैं। उनका नाम दुर्गादेवी है। वे सौ भुजाओंसे युक्त हैं और महती दुर्गतिका नाश करनेवाली हैं। त्रिनेत्रधारी महादेवजीकी प्रिया हैं। साध्वी हैं। त्रिगुणमयी एवं त्रिलोचना हैं। त्रिलोचन शिवकी प्राणरूपा हैं। उनके मस्तकपर विशुद्ध अर्द्धचन्द्रका मुकुट है। वे मालतीकी पुष्पमालाओंसे अलंकृत केशपाश धारण करती हैं। उनका मुख सुन्दर एवं गोलाकार है। वे भगवान् शिवके मनको मोहनेवाली हैं। रत्नोंके युगल कुण्डलसे उनके कपोल उद्भासित होते रहते हैं। वे नासिकाके दक्षिण भागमें गजमुक्तासे निर्मित नथ धारण करती हैं। कानोंमें बहुसंख्यक बहुमूल्य रत्नमय आभूषण पहनती हैं। मोतियोंकी पाँतको तिरस्कृत करनेवाली दन्तपंक्ति उनके मुखकी शोभा बढ़ाती है। पके हुए बिम्बफलके समान उनके लाल-लाल ओठ हैं। वे अत्यन्त प्रसन्न तथा परम मङ्गलमयी हैं। विचित्र पत्ररचनासे रमणीय

उनके कपोल-युगल परम उज्ज्वल प्रतीत होते हैं। रत्नोंके बने हुए बाजूबन्द, कंगन तथा रत्नमय मञ्जीर उनके विभिन्न अङ्गोंका सौन्दर्य बढ़ाते हैं। रत्नमय कङ्कणोंसे उनके दोनों हाथ विभूषित हैं। रत्नमय पाशक उनकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नमयी अंगूठियोंसे उनके हाथोंकी अँगुलियाँ जगमगाती रहती हैं। पैरोंकी अँगुलियोंके और नखोंमें लगे हुए महावरकी रेखा उनकी शोभावृद्धि करती है। वे अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण करती हैं। उनके विभिन्न अङ्ग गन्ध, चन्दनसे चर्चित हैं। वे कस्तूरीके बिन्दुओंसे सुशोभित दो स्तन धारण करती हैं। सम्पूर्ण रूप और गुणोंसे सम्पन्न हैं तथा गजराजके समान मन्द गतिसे चलती हैं। अत्यन्त कान्तिमती तथा शान्तस्वरूपा हैं। योगसिद्धियोंमें बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं। विधाताकी भी सृष्टि करनेवाली तथा सबकी माता हैं। समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाली हैं। शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति उनका परम सुन्दर मुख है। वे अत्यन्त मनोहारिणी हैं। उनके भालदेशका मध्यभाग कस्तूरी-बिन्दु, चन्दन-बिन्दु तथा सिन्दूर-बिन्दुसे सदा उद्दीप्त होता रहता है। उनके नेत्र शरदृतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलोंकी कान्तिको छीने लेते हैं। काजलकी सुन्दर रेखाओंसे वे सर्वथा सुशोभित होते हैं। उनके श्रीअङ्ग करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्यलीलाको तिरस्कृत करनेवाले हैं। वे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनका मस्तक उत्तम रत्नोंके बने हुए मुकुटसे उद्भासित होता है। वे स्रष्टाकी सृष्टिमें शिल्परूपा और पालकके पालनमें दयारूपा हैं। संहारकालमें संहारककी उत्तम संहाररूपिणी शक्ति हैं। निशुम्भ और शुम्भको मथ डालनेवाली तथा महिषासुरका मर्दन करनेवाली हैं। पूर्वकालमें त्रिपुर-युद्धके समय त्रिपुरारि महादेवने इनकी स्तुति की थी। मधु और कैटभके युद्धमें वे विष्णुकी शक्तिस्वरूपिणी थीं। समस्त दैत्योंका वध तथा रक्तबीजका विनाश करनेवाली यही हैं। हिरण्यकशिपुके वधकालमें ये नृसिंहशक्तिरूपमें प्रकट हुई थीं। हिरण्याक्षके वधकालमें भगवान् वाराहके भीतर वाराही शक्ति यही थीं। ये परब्रह्मरूपिणी तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। मैं सदा इनका भजन करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष अपने सिरपर पुष्प रखे और पुनः ध्यान करके भक्तिभावसे आवाहन करे। प्रकृतिकी प्रतिमाका स्पर्श करके मनुष्य इस प्रकार मन्त्र पढ़े तथा मन्त्रद्वारा ही यत्नपूर्वक जीव-न्यास करे।

अम्ब! भगवति! सनातनि! शिवलोकसे आओ, आओ। सुरेश्वरि! मेरी शारदीया पूजा ग्रहण करो। जगत्पूज्ये! महेश्वरि! यहाँ आओ, ठहरो, ठहरो। हे मातः! हे अम्बिके! तुम इस प्रतिमामें निवास करो। अच्युते! इस प्रतिमामें तुम्हारे प्राण निम्नभागमें रहनेवाले प्राणोंके साथ आवें, रहें। तुम्हारी सम्पूर्ण शक्तियाँ इस प्रतिमामें तुरंत पदार्पण करें। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गायै स्वाहा।**' इस मन्त्रका उच्चारण करके कहे—'हे सदाशिवे! इस प्रतिमाके हृदयमें प्राण स्थित हों। चण्डिके! सम्पूर्ण इन्द्रियोंके अधिदेवता यहाँ आवें। तुम्हारी शक्तियाँ यहाँ आवें। ईश्वर यहाँ आवें। देवि! तुम इस प्रतिमामें पधारो।' इस प्रकार आवाहन करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे परिहार-स्तुति करनी चाहिये। विप्रवर! एकाग्रचित्त होकर परिहारको सुनो।

शिवप्रिये! भगवति अम्बे! शिवलोकसे जो तुम आयी हो, तुम्हारा स्वागत है। भद्रे! मुझपर कृपा करो। भद्रकालि! तुम्हें नमस्कार है। दुर्गे! माहेश्वरि! तुम जो मेरे घरमें आयी हो, इससे मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ और मेरा जीवन सफल है। आज मेरा जन्म सफल और जीवन सार्थक हुआ; क्योंकि मैं भारतवर्षके पुण्यक्षेत्रमें दुर्गाजीका पूजन करता हूँ। जो विद्वान् भारतवर्षमें आप पूजनीया दुर्गाका पूजन करता है, वह अन्तमें गोलोकधामको जाता है और इहलोकमें भी उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न

बना रहता है। वैष्णवीदेवीकी पूजा करके विद्वान् पुरुष विष्णुलोकमें जाता है और माहेश्वरीकी पूजा करके वह शिवलोकको प्राप्त होता है। वेदोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसीके भेदसे तीन प्रकारकी देवीकी पूजा बतायी गयी है, जो क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम है। सात्त्विकी पूजा वैष्णवोंकी है, शाक्त आदि राजसी पूजा करते हैं और जो किसी मन्त्रकी दीक्षा नहीं ले सके हैं, ऐसे असत् पुरुषोंकी पूजा तामसी कही गयी है। जो पूजा जीवहत्यासे रहित और श्रेष्ठ है, वही सात्त्विकी एवं वैष्णवी मानी गयी है। वैष्णवलोग वैष्णवीदेवीके वरदानसे गोलोकमें जाते हैं। माहेश्वरी एवं राजसी पूजामें बलिदान होता है। शाक्त आदि राजस पुरुष उस पूजासे कैलासमें जाते हैं। किरात लोग तामसी पूजाद्वारा भूत-प्रेतोंकी आराधना करके नरकमें पड़ते हैं। माँ! तुम्हीं जगत्के जीवोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों फल प्रदान करनेवाली हो। तुम परमात्मा श्रीकृष्णकी सर्वशक्तिस्वरूपा हो। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका अपहरण करनेवाली परात्परा हो। सुखदायिनी, मोक्षदायिनी, भद्रा (कल्याणकारिणी) तथा सदा श्रीकृष्णभक्ति प्रदान करनेवाली हो। महामाये! नारायणि! दुर्गे! तुम दुर्गतिका नाश करनेवाली हो। दुर्गा नामके स्मरणमात्रसे यहाँ मनुष्योंका दुर्गम कष्ट दूर हो जाता है।

इस प्रकार परिहार-स्तवन करके साधक देवीके बायें भागमें तिपाईके ऊपर शङ्ख रखे। उसमें जल भर दे और दूर्वा, पुष्प तथा चन्दन डाल दे। तत्पश्चात् उसे दाहिने हाथसे पकड़कर मनुष्य इस तरह मन्त्र पढ़े।

'हे शङ्ख! तुम पवित्र वस्तुओंमें परम पवित्र हो, मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। पूर्वकल्पमें शङ्खचूडसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई, इसलिये परम पवित्र हो।' इस विधिसे अर्घ्यपात्रकी स्थापना करके विद्वान् पुरुष उसे देवीको अर्पित करे। तदनन्तर सोलह उपचार चढ़ाकर देवीकी पूजा करे। सजल कुशसे त्रिकोण मण्डल बनाकर वहाँ धार्मिक पुरुष कच्छप, शेषनाग और पृथ्वीका पूजन करे। मण्डलके भीतर ही तिपाई रखे और उसके ऊपर शङ्ख। शङ्खमें तीन भाग जल डालकर उसकी पूजा करे तथा उसमें गङ्गा आदि तीर्थोंका आवाहन करते हुए कहे—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि चन्द्रभागे च कौशिकि॥
स्वर्णरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि।
श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति॥
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे।
शतह्रदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

हे गङ्गे! यमुने! गोदावरि! सरस्वति! नर्मदे! सिन्धु! कावेरि! चन्द्रभागे! कौशिकि! स्वर्णरेखे! कनखले! पारिभद्रे! गण्डकि! श्वेतगङ्गे! चन्द्ररेखे! पम्पे! चम्पे! गोमति! पद्मावति! त्रिपर्णाशे! विपाशे! विरजे! प्रभे! शतह्रदे! तथा चेलगङ्गे! आपलोग इस जलमें निवास करें।

तत्पश्चात् उस जलमें तुलसी और चन्दनसे अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण तथा शिव—इन छः देवताओंकी पूजा करे। फिर उस जलसे समस्त नैवेद्योंका प्रोक्षण करे। इसके बाद एक-एक करके सोलह उपचार समर्पित करे। आसन, वसन, पाद्य, स्नानीय, अनुलेपन, मधुपर्क, गन्ध, अर्घ्य, पुष्प, अभीष्ट नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, रत्नमय भूषण, धूप, दीप और शय्या—ये सोलह उपचार हैं।

(आसन) शंकरप्रिये! अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित तथा नाना प्रकारके चित्रोंद्वारा शोभित श्रेष्ठ सिंहासन ग्रहण करो। (वस्त्र) शिवे! असंख्य सूत्रोंसे बने हुए तथा ईश्वरकी इच्छासे निर्मित प्रज्वलित अग्निद्वारा शुद्ध किया हुआ दिव्य वस्त्र स्वीकार करो। (पाद्य) दुर्गे! बहुमूल्य रत्नमय पात्रमें रखे हुए निर्मल गङ्गाजलको पैर धोनेके लिये पाद्यके रूपमें ग्रहण करो। (स्नानीय) परमेश्वरि! सुगन्धित आँवलेका

स्निग्ध द्रव और परम दुर्लभ सुपक्व विष्णुतैल स्नानीय सामग्रीके रूपमें प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करो। (अनुलेपन) जगदम्ब! कस्तूरी और कुङ्कुमसे मिश्रित सुगन्धित चन्दनद्रव सुवासित अनुलेपनके रूपमें समर्पित है। इसे ग्रहण करो। (मधुपर्क) महादेवि! रत्नपात्रमें स्थित परम पवित्र एवं परम मङ्गलमय माध्वीक मधुपर्कके रूपमें प्रस्तुत है। इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो। (गन्ध) देवि! विभिन्न वृक्षोंके मूलका चूर्ण गन्ध द्रव्यसे युक्त हो परम पवित्र एवं मङ्गलोपयोगी गन्धके रूपमें समर्पित है। इसे ग्रहण करो। (अर्घ्य) चण्डिके! पवित्र शङ्खपात्रमें स्थित स्वर्गङ्गाका जल दूर्वा, पुष्प और अक्षतसे युक्त अर्घ्यके रूपमें अर्पित है। इसे स्वीकार करो। (पुष्प) जगदम्बिके! पारिजात-वृक्षसे उत्पन्न सुगन्धित श्रेष्ठ पुष्प और मालती आदि फूलोंकी माला ग्रहण करो। (नैवेद्य) शिवे! दिव्य सिद्धान्न, आमान्न, पीठा, खीर आदि, लड्डू और दूसरे-दूसरे मिष्टान्न तथा सामयिक फल नैवेद्यके रूपमें प्रस्तुत हैं। इन्हें स्वीकार करो। (आचमनीय) गिरिराजनन्दिनि! मैंने भक्तिभावसे आचमनीयके रूपमें कर्पूर आदिसे सुसंस्कृत एवं सुवासित शीतल जल अर्पित किया है। इसे ग्रहण करो। (ताम्बूल) देवि! सुपारी, पान और चूनाको एकत्र करके उसे कर्पूर आदिसे सुवासित किया है। वही यह समस्त भोगोंमें श्रेष्ठ रमणीय ताम्बूल है। इसे स्वीकार करो। (रत्नमय भूषण) देवि! अत्यन्त मूल्यवान् रत्नोंके सार-भागके द्वारा ईश्वरेच्छासे निर्मित तथा सम्पूर्ण अङ्गोंको शोभासम्पन्न बनानेवाला रत्नमय आभूषण ग्रहण करो। (धूप) देवि! वृक्षकी गोदके चूर्णको सुगन्धित वस्तुओंसे मिश्रित करके अग्निकी शिखासे शुद्ध किया गया है। इस धूपको स्वीकार करो। (दीप) परमेश्वरि! घने अन्धकारको दूर करनेवाला यह परम पवित्र दीप दिव्य रत्नविशेष है। इसे ग्रहण करो। (शय्या) देवि! यह उत्तम दिव्य पर्यङ्क रत्नोंके सारभागसे निर्मित हुआ है। इसपर गद्दा है और वह महीन वस्त्रकी चादरसे ढका हुआ है। तुम इस शय्याको स्वीकार करो।

मुने! इस प्रकार दुर्गादेवीका पूजन करके उन्हें पुष्पाञ्जलि चढ़ावे। तदनन्तर देवीकी सहचरी आठ नायिकाओंका यत्नतः पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, अतिचण्डा, चामुण्डा, चण्डा और चण्डवती। अष्टदल कमलपर पूर्व आदि दिशाके क्रमसे इनकी स्थापना करके पञ्चोपचारोंद्वारा पूजन करे। दलोंके मध्यभागमें भैरवोंका पूजन करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—महाभैरव, संहारभैरव, असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूडभैरव तथा चन्द्रचूडभैरव। इन सबकी पूजा करके बीचकी कर्णिकामें नौ शक्तियोंका पूजन करे। क्रम यह है कि कमलके आठ दलोंमें आठ शक्तियोंकी और बीचकी कर्णिकामें नवीं शक्तिकी स्थापना करे। इस तरह इन सबका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। इन शक्तियोंके नाम यों हैं—ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी तथा कार्तिकी (कौमारी)। इनके अतिरिक्त नवीं प्रधाना शक्ति हैं सर्वमङ्गला, जो सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। इन नौ शक्तियोंका पूजन करनेके पश्चात् कलशमें देवताओंका पूजन करे। शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, वरुण, देवीकी चेटी, वटु तथा चौंसठ योगिनी—इन सबका विधिवत् पूजन करके यथाशक्ति भेंट—उपहार अर्पित करके विद्वान् पुरुष स्तुति करे। कवचको भक्तिपूर्वक पढ़कर उसे गलेमें बाँध ले। फिर परिहारनामक स्तुति करके विद्वान् पुरुष देवीको नमस्कार करे। इस प्रकार उपहार दे स्तुति करके कवच बाँधकर विद्वान् पुरुष धरतीपर माथा टेक दण्डवत् प्रणाम करे और ब्राह्मणको दक्षिणा दे। (अध्याय ६३-६४)

देवीके बोधन, आवाहन, पूजन और विसर्जनके नक्षत्र, इन सबकी महिमा, राजाको देवीका दर्शन एवं उत्तम ज्ञानका उपदेश देना

नारदजीने पूछा—महाभाग! आपने जो कुछ कहा है, वह अमृतरससे भी बढ़कर मधुर और उत्तम है। उसे पूर्णरूपसे मैंने सुन लिया। प्रभो! अब भलीभाँति यह बताइये कि देवीका स्तोत्र और कवच क्या है? तथा उनके पूजनसे किस फलकी प्राप्ति होती है?

नारायणने कहा—आर्द्रा नक्षत्रमें देवीको जगावे और मूल नक्षत्रमें उनका प्रतिमामें प्रवेश या आवाहन करे। फिर उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें पूजा करके श्रवण नक्षत्रमें देवीका विसर्जन करे। आर्द्रायुक्त नवमी तिथिमें देवीको जगाकर जो पूजा की जाती है, उस एक बारकी पूजासे मनुष्य सौ वर्षोंतककी की हुई पूजाका फल पा लेता है। मूल नक्षत्रमें देवीका प्रवेश होनेपर यज्ञका फल प्राप्त होता है। उत्तराषाढ़में पूजन करनेपर वाजपेय-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। श्रवण नक्षत्रमें देवीका विसर्जन करके मनुष्य लक्ष्मी तथा पुत्र-पौत्रोंको पाता है, इसमें संशय नहीं है। देवीकी पूजासे मनुष्यको पृथ्वीकी परिक्रमाका पुण्य प्राप्त होता है। यदि तिथिके साथ आर्द्रा नक्षत्रका योग न मिले तो केवल नवमीमें पार्वतीका बोधन करके मनुष्य एक पक्षतक पूजन करे तो उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। उस दशामें नवमीको पूजन करके दशमीको विसर्जन कर दे। सप्तमीको पूजन करके विद्वान् पुरुष बलि अर्पण करे, अष्टमीको बलिरहित पूजन उत्तम माना गया है। अष्टमीको बलि देनेसे मनुष्योंपर विपत्ति आती है। विद्वान् पुरुष नवमी तिथिको भक्तिभावसे विधिवत् बलि दे। विप्रवर! उस बलिसे मनुष्योंपर दुर्गाजी प्रसन्न होती हैं। परंतु यह बलि हिंसात्मक नहीं होनी चाहिये; क्योंकि हिंसासे मनुष्य पापका भागी होता है, इसमें संशय नहीं। जो जिसका वध करता है, वह मारा गया प्राणी भी जन्मान्तरमें उस मारनेवालेका वध करता है—यह वेदकी वाणी है।* इसीलिये वैष्णवजन वैष्णवी (हिंसारहित) पूजा करते हैं।

इस प्रकार पूरे वर्षतक भक्तिभावसे पूजन करके गलेमें कवच बाँधकर राजाने परमेश्वरीका स्तवन किया। उनके द्वारा किये गये स्तवनसे संतुष्ट हुई देवीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये। उन्होंने सामने देवीको देखा, वे ग्रीष्म-ऋतुके सूर्यकी भाँति देदीप्यमान थीं। वे तेजःस्वरूपा, सगुणा एवं निर्गुणा परादेवी तेजोमण्डलके मध्यभागमें स्थित हो अत्यन्त कमनीय जान पड़ती थीं। भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर हुई उन कृपारूपा स्वेच्छामयी देवीको देखकर राजेन्द्र सुरथने भक्तिसे गर्दन नीची करके पुनः उनकी स्तुति की। उस स्तुतिसे संतुष्ट हो जगदम्बाने मन्द मुस्कराहटके साथ राजेन्द्रको सम्बोधित करके कृपापूर्वक यह सत्य बात कही।

प्रकृति बोली—राजन्! तुम साक्षात् मुझको पाकर उत्तम वैभव माँग रहे हो। इस समय तुम्हें यही अभीष्ट है, इसलिये मैं वैभव ही दे रही हूँ। महाराज! तुम अपने समस्त शत्रुओंको जीतकर निष्कण्टक राज्य पाओ। फिर दूसरे जन्ममें तुम सावर्णि नामक आठवें मनु होओगे। नरेश्वर! मैं परिणाममें (अन्ततोगत्वा) तुम्हें ज्ञान दूँगी। साथ ही परमात्मा श्रीकृष्णमें भक्ति एवं दास्यभाव प्रदान करूँगी। जो मन्दबुद्धि मानव साक्षात् मुझको पाकर वैभवकी याचना करता है, वह मायासे ठगा गया है; इसलिये विष खाता है और अमृतका त्याग करता है। ब्रह्मा आदिसे

---

* हिंसाजन्यं च पापं च लभते नात्र संशयः॥ यो यं हन्ति स तं हन्ति चेति वेदोक्तमेव च।
(प्रकृतिखण्ड ६५। १०, १२)

लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् नश्वर ही है, केवल निर्गुण परब्रह्म श्रीकृष्ण ही नित्य सत्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिकी आदिजननी परात्परा प्रकृति मैं ही हूँ। मैं सगुणा, निर्गुणा, श्रेष्ठा, सदा स्वेच्छामयी, नित्यानित्या, सर्वरूपा, सर्वकारणकारणा और सबकी बीजरूपा मूलप्रकृति ईश्वरी हूँ। रमणीय गोलोकमें पुण्यमय वृन्दावनके भीतर रासमण्डलमें परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिका राधा मैं ही हूँ। मैं ही दुर्गा, विष्णुमाया तथा बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हूँ। वैकुण्ठमें मैं ही लक्ष्मी और साक्षात् सरस्वती देवी हूँ। ब्रह्मलोकमें मुझे ही ब्रह्माणी तथा वेदमाता सावित्री कहते हैं। मैं ही गङ्गा, तुलसी तथा सबकी आधारभूता वसुन्धरा हूँ। नरेश्वर! मैंने अपनी कलासे नाना प्रकारके रूप धारण किये हैं। मायाद्वारा सम्पूर्ण स्त्रियोंके रूपमें मेरा ही प्रादुर्भाव हुआ है। परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्णने अपनी भ्रूभङ्गलीलासे मेरी सृष्टि की है। उन्हीं पुरुषोत्तमने अपनी भ्रूभङ्गलीलासे उस महान् विराट्की भी सृष्टि की है, जिसके रोमकूपोंमें सदैव असंख्य विश्व-ब्रह्माण्ड निवास करते हैं। वे सब-के-सब कृत्रिम हैं, तथापि मायासे सब लोग उन अनित्य लोकोंमें भी सदा नित्यबुद्धि करते हैं। सातों द्वीपों और समुद्रोंसे युक्त पृथ्वी, नीचेके सात पाताल और ऊपरके सात स्वर्ग—इन सबको मिलाकर एक विश्व-ब्रह्माण्ड कहा गया है, जिसकी रचना ब्रह्माद्वारा हुई है। इस तरहके जो असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, उन सबमें पृथक्-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि विद्यमान हैं। उन सबके ईश्वर श्रीकृष्ण हैं। यही परात्पर ज्ञान है। वेदों, व्रतों, तीर्थों, तपस्याओं, देवताओं और पुण्योंका जो सारतत्त्व है, वह श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्ण-भक्तिसे हीन जो मूढ़ मनुष्य है, वह निश्चय ही जीते-जी मृतकके समान है। श्रीकृष्ण-भक्तोंको छूकर बहनेवाली वायुका स्पर्श पाकर सारे तीर्थ पवित्र हो गये हैं। श्रीकृष्ण-मन्त्रोंका उपासक ही जीवन्मुक्त माना गया है। जप, तप, तीर्थ और पूजाके बिना केवल मन्त्रग्रहणमात्रसे नर नारायण हो जाता है। श्रीकृष्ण-भक्त अपने नाना और उनके ऊपरकी सौ पीढ़ियोंका तथा पितासे लेकर ऊपरकी एक सहस्र पीढ़ियोंका उद्धार करके गोलोकमें जाता है। नरेश्वर! यह सारभूत ज्ञान मैंने तुम्हें बताया है। सावर्णिक मन्वन्तरके अन्तमें जब तुम्हारे सारे दोष समाप्त हो जायँगे, उस समय मैं तुम्हें श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करूँगी।

कर्मोंका फल भोगे बिना उनका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी क्षय नहीं होता है। अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।* मैं जिसपर अनुग्रह करती हूँ, उसे परमात्मा श्रीकृष्णके प्रति निर्मल, निश्चल एवं सुदृढ़ भक्ति प्रदान करती हूँ और जिन्हें ठगना चाहती हूँ; उन्हें प्रातःकालिक स्वप्नके समान मिथ्या एवं भ्रमरूपिणी सम्पत्ति प्रदान करती हूँ। बेटा! मैंने तुम्हें यह ज्ञानकी बात बतायी है। अब तुम सुखपूर्वक जाओ।

ऐसा कहकर महादेवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। राज्यप्राप्तिका वरदान पाकर राजा देवीको नमस्कार करके अपने घरको चले गये। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें दुर्गाजीका परम उत्तम उपाख्यान सुनाया है। (अध्याय ६५)

---

* मा भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥
(प्रकृतिखण्ड ६५। ४७)

दुर्गाजीका दुर्गनाशनस्तोत्र तथा प्रकृतिकवच या ब्रह्माण्डमोहनकवच एवं उसका माहात्म्य

नारदजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! मैंने सब कुछ सुन लिया। अवश्य ही अब कुछ भी सुनना शेष नहीं रहा। केवल प्रकृतिदेवीके स्तोत्र और कवचका मुझसे वर्णन कीजिये।

श्रीनारायण बोले—नारद! सबसे पहले गोलोकमें परमात्मा श्रीकृष्णने वसन्त-ऋतुमें रासमण्डलके भीतर प्रसन्नतापूर्वक देवीकी पूजा करके उनकी स्तुति की थी। दूसरी बार मधु और कैटभके साथ युद्धके अवसरपर भगवान् विष्णुने देवीका स्तवन किया। तीसरी बार वहीं प्राणसंकटका अवसर आया जान ब्रह्माजीने दुर्गादेवीकी स्तुति की थी। मुने! चौथी बार त्रिपुरारि शिवने त्रिपुरोंके साथ अत्यन्त घोरतर युद्धका अवसर आनेपर भक्तिभावसे देवीका स्तवन किया था और पाँचवीं बार वृत्रासुरवधके समय घोर प्राणसंकटकी बेलामें सम्पूर्ण देवताओंसहित इन्द्रने दुर्गादेवीकी स्तुति की थी। तबसे मुनीन्द्रों, मनुओं और सुरथ आदि मनुष्योंने प्रत्येक कल्पमें परात्परा परमेश्वरीका स्तवन एवं पूजन करना आरम्भ किया। ब्रह्मन्! अब तुम देवीका स्तोत्र सुनो, जो सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश करनेवाला, सुखदायक, मोक्षदायक, सार वस्तु तथा भवसागरसे पार होनेका साधन है।

श्रीकृष्ण उवाच

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी॥
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधा स्वयम्।
दक्षिणा सर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी॥
निद्रा त्वं च दया त्वं च तृष्णा त्वं चात्मनः प्रिया।
क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती॥
श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा दया तथा।
सतां सम्पत्स्वरूपा च विपत्तिरसतामिह॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा।
शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम्॥
देवेभ्यः स्वपदोदात्री धातुर्धात्री कृपामयी।
हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम्।
सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी॥
ब्रह्माणी माहेश्वरी च विष्णुमाया च वैष्णवी।
भद्रदा भद्रकाली च सर्वलोकभयङ्करी॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे।
सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा॥
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी।
रक्षास्वरूपा शिष्टानां मातेव हितकारिणी॥
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वं च ब्रह्मादीनां च सर्वदा।
ब्राह्मण्यरूपा विप्राणां तपस्या च तपस्विनाम्॥
विद्या विद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम्।
मेधास्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम्॥
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी।
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा त्वं रक्षारूपा च पालने॥
तथान्ते त्वं महामारी विश्वस्य विश्वपूजिते।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया सम्मोहितं जगत्।
यया मुग्धो हि विद्वांश्च मोक्षमार्गं न पश्यति॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गाया दुर्गनाशनम्।
पूजाकाले पठेद्यो हि सिद्धिर्भवति वाञ्छिता॥

(प्रकृतिखण्ड ६६। ७—२६)

श्रीकृष्ण बोले—देवि! तुम्हीं सबकी जननी, मूलप्रकृति ईश्वरी हो। तुम्हीं सृष्टिकार्यमें आद्याशक्ति हो। तुम अपनी इच्छासे त्रिगुणमयी बनी हुई हो। कार्यवश सगुण रूप धारण करती हो। वास्तवमें स्वयं निर्गुणा हो। सत्या, नित्या, सनातनी एवं परब्रह्मस्वरूपा हो, परमा तेज:स्वरूपा हो। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये दिव्य शरीर धारण करती हो। तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधारा, परात्परा, सर्वबीजस्वरूपा, सर्वपूज्या, निराश्रया, सर्वज्ञा, सर्वतोभद्रा (सब ओरसे मङ्गलमयी), सर्वमङ्गलमङ्गला, सर्वबुद्धिस्वरूपा, सर्वशक्तिरूपिणी, सर्वज्ञानप्रदा देवी, सब कुछ जाननेवाली और सबको उत्पन्न करनेवाली हो। देवताओंके लिये हविष्य दान करनेके निमित्त तुम्हीं स्वाहा हो, पितरोंके लिये श्राद्ध अर्पण करनेके निमित्त तुम स्वयं ही स्वधा हो, सब प्रकारके दानयज्ञमें दक्षिणा हो तथा सम्पूर्ण शक्तियाँ तुम्हारा ही स्वरूप हैं। तुम निद्रा, दया और मनको प्रिय लगनेवाली तृष्णा हो। क्षुधा, क्षमा, शान्ति, ईश्वरी, कान्ति तथा शाश्वती सृष्टि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्रद्धा, पुष्टि, तन्द्रा, लज्जा, शोभा और दया हो। सत्पुरुषोंके यहाँ सम्पत्ति और दुष्टोंके घरमें विपत्ति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं पुण्यवानोंके लिये प्रीतिरूप हो, पापियोंके लिये कलहका अङ्कुर हो तथा समस्त जीवोंकी कर्ममयी शक्ति भी सदा तुम्हीं हो। देवताओंको उनका पद प्रदान करनेवाली तुम्हीं हो। धाता (ब्रह्मा)-का भी धारण-पोषण करनेवाली दयामयी धात्री तुम्हीं हो। सम्पूर्ण देवताओंके हितके लिये तुम्हीं समस्त असुरोंका विनाश करती हो। तुम योगनिद्रा हो। योग तुम्हारा स्वरूप है। तुम योगियोंको योग प्रदान करनेवाली हो। सिद्धोंकी सिद्धि भी तुम्हीं हो। तुम सिद्धिदायिनी और सिद्धयोगिनी हो। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, विष्णु-माया, वैष्णवी तथा भद्रदायिनी भद्रकाली भी तुम्हीं हो। तुम्हीं समस्त लोकोंके लिये भय उत्पन्न करती हो। गाँव-गाँवमें ग्रामदेवी और घर-घरमें गृहदेवी भी तुम्हीं हो। तुम्हीं सत्पुरुषोंकी कीर्ति और प्रतिष्ठा हो। दुष्टोंकी होनेवाली सदा निन्दा भी तुम्हारा ही स्वरूप है। तुम महायुद्धमें दुष्टसंहाररूपिणी महामारी हो और शिष्ट पुरुषोंके लिये माताकी भाँति हितकारिणी एवं रक्षारूपिणी हो। ब्रह्मा आदि देवताओंने सदा तुम्हारी वन्दना, पूजा एवं स्तुति की है। ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणता और तपस्वीजनोंकी तपस्या भी तुम्हीं हो, विद्वानोंकी विद्या, बुद्धिमानोंकी बुद्धि, सत्पुरुषोंकी मेधा और स्मृति तथा प्रतिभाशाली पुरुषोंकी प्रतिभा भी तुम्हारा ही स्वरूप है। राजाओंका प्रताप और वैश्योंका वाणिज्य भी तुम्हीं हो। विश्वपूजिते! सृष्टिकालमें सृष्टिरूपिणी, पालनकालमें रक्षारूपिणी तथा संहारकालमें विश्वका विनाश करनेवाली महामारीरूपिणी भी तुम्हीं हो। तुम्हीं कालरात्रि, महारात्रि तथा मोहिनी, मोहरात्रि हो; तुम मेरी दुर्लङ्घ्य माया हो, जिसने सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित कर रखा है तथा जिससे मुग्ध हुआ विद्वान् पुरुष भी मोक्षमार्गको नहीं देख पाता।

इस प्रकार परमात्मा श्रीकृष्णद्वारा किये गये दुर्गाके दुर्गम संकटनाशनस्तोत्रका जो पूजाकालमें पाठ करता है, उसे मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त होती है।

जो नारी वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा तथा दुर्भगा है, वह भी एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करके निश्चय ही उत्तम पुत्र प्राप्त कर लेती है। जो पुरुष अत्यन्त घोर कारागारके भीतर दृढ़ बन्धनमें बँधा हुआ है, वह एक ही मासतक इस स्तोत्रको सुन ले तो अवश्य ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य राजयक्ष्मा, गलित कोढ़, महाभयंकर शूल और महान् ज्वरसे ग्रस्त है, वह एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण कर

ले तो शीघ्र ही रोगसे छुटकारा पा जाता है। पुत्र, प्रजा और पत्नीके साथ भेद (कलह आदि) होनेपर यदि एक मासतक इस स्तोत्रको सुने तो इस संकटसे मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। राजद्वार, श्मशान, विशाल वन तथा रणक्षेत्रमें और हिंसक जन्तुके समीप भी इस स्तोत्रके पाठ और श्रवणसे मनुष्य संकटसे मुक्त हो जाता है। यदि घरमें आग लगी हो, मनुष्य दावानलसे घिर गया हो अथवा डाकुओंकी सेनामें फँस गया हो तो इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे वह उस संकटसे पार हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। जो महादरिद्र और मूर्ख है, वह भी एक वर्षतक इस स्तोत्रको पढ़े तो निस्संदेह विद्वान् और धनवान् हो जाता है।

नारदजीने कहा—समस्त धर्मोंके ज्ञाता तथा सम्पूर्ण ज्ञानमें विशारद भगवन्! ब्रह्माण्ड-मोहन नामक प्रकृतिकवचका वर्णन कीजिये।

भगवान् नारायण बोले—वत्स! सुनो। मैं उस परम दुर्लभ कवचका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें साक्षात् श्रीकृष्णने ही ब्रह्माजीको इस कवचका उपदेश दिया था। फिर ब्रह्माजीने गङ्गाजीके तटपर धर्मके प्रति इस सम्पूर्ण कवचका वर्णन किया था। फिर धर्मने पुष्करतीर्थमें मुझे कृपापूर्वक इसका उपदेश दिया, यह वही कवच है, जिसे पूर्वकालमें धारण करके त्रिपुरारि शिवने त्रिपुरासुरका वध किया था और ब्रह्माजीने जिसे धारण करके मधु और कैटभसे प्राप्त होनेवाले भयको त्याग दिया था। जिसे धारण करके भद्रकालीने रक्तबीजका संहार किया, देवराज इन्द्रने खोयी हुई राज्य-लक्ष्मी प्राप्त की, महाकाल चिरजीवी और धार्मिक हुए, नन्दी महाज्ञानी होकर सानन्द जीवन बिताने लगा, परशुरामजी शत्रुओंको भय देनेवाले महान् योद्धा बन गये तथा जिसे धारण करके ज्ञानिशिरोमणि दुर्वासा भगवान् शिवके तुल्य हो गये।

'ॐ दुर्गायै स्वाहा' यह मन्त्र मेरे मस्तककी रक्षा करे। इस मन्त्रमें छः अक्षर हैं। यह भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान है। मुने! इस मन्त्रको ग्रहण करनेके विषयमें वेदोंमें किसी बातका विचार नहीं किया गया है। मन्त्रको ग्रहण करनेमात्रसे मनुष्य विष्णुके समान हो जाता है। **'ॐ दुर्गायै नमः'** यह मन्त्र सदा मेरे मुखकी रक्षा करे। **'ॐ दुर्गे रक्ष'** यह मन्त्र सदा मेरे कण्ठकी रक्षा करे। **'ॐ ह्रीं श्रीं'** यह मन्त्र निरन्तर मेरे कंधेका संरक्षण करे। **'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं'** यह मन्त्र सदा सब ओरसे मेरे पृष्ठभागका पालन करे। **'ह्रीं'** मेरे वक्षःस्थलकी और **'श्रीं'** सदा मेरे हाथकी रक्षा करे। **'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं'** यह मन्त्र सोते और जागते समय सदा मेरे सर्वाङ्गका संरक्षण करे। पूर्वदिशामें प्रकृति मेरी रक्षा करे। अग्निकोणमें चण्डिका रक्षा करे। दक्षिणदिशामें भद्रकाली, नैर्ऋत्यकोणमें महेश्वरी, पश्चिमदिशामें वाराही और वायव्यकोणमें सर्वमङ्गला मेरा संरक्षण करे। उत्तरदिशामें वैष्णवी, ईशानकोणमें शिवप्रिया तथा जल, थल और आकाशमें जगदम्बिका मेरा पालन करे।

वत्स! यह परम दुर्लभ कवच मैंने तुमसे कहा है। इसका उपदेश हर एकको नहीं देना चाहिये और न किसीके सामने इसका प्रवचन ही करना चाहिये। जो वस्त्र, आभूषण और चन्दनसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके इस कवचको धारण करता है, वह विष्णु ही है, इसमें संशय नहीं है। मुने! सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा और पृथ्वीकी परिक्रमा करनेपर मनुष्यको जो फल मिलता है, वही इस कवचको धारण करनेसे मिल जाता है। पाँच लाख जप करनेसे निश्चय ही यह कवच सिद्ध हो जाता है। जिसने कवचको सिद्ध कर लिया है, उस मनुष्यको रणसंकटमें

अस्त्र नहीं बेधता है। अवश्य ही वह जल या अग्निमें प्रवेश कर सकता है। वहाँ उसकी मृत्यु नहीं होती है। वह सम्पूर्ण सिद्धोंका ईश्वर एवं जीवन्मुक्त हो जाता है। जिसको यह कवच सिद्ध हो गया है, वह निश्चय ही भगवान् विष्णुके समान हो जाता है।*

मुने! इस प्रकार प्रकृतिखण्डका वर्णन किया गया, जो अमृतकी खाँड़से भी अधिक मधुर है। जिन्हें मूलप्रकृति कहते हैं तथा जिनके पुत्र गणेश हैं, उन देवी पार्वतीने श्रीकृष्णका व्रत करके ही गणपति-जैसा पुत्र प्राप्त किया था। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण अपने अंशसे गणेश हुए थे। यह प्रकृतिखण्ड सुननेमें सुखद और सुधाके समान मधुर है। इसे सुनकर वक्ताको दही, अन्न भोजन करावे और उसे सुवर्ण दान दे। बछड़ेसहित सुन्दर गौका भक्तिपूर्वक दान करे। मुने! वाचकको वस्त्र, आभूषण तथा रत्न देकर संतुष्ट करे। पुष्प, आभूषण, वस्त्र तथा नाना प्रकारके उपहार ले भक्ति और श्रद्धाके साथ पुस्तककी पूजा करे। जो ऐसा करके कथा सुनता है, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उसके पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है। वह भगवान्‌की कृपासे यशस्वी होता है। उसके घरमें लक्ष्मी निवास करती हैं और अन्तमें वह गोलोकको प्राप्त होता है। उसे श्रीकृष्णका दास्यभाव सुलभ होता है तथा भगवान् श्रीकृष्णमें उसकी अविचल भक्ति हो जाती है।

(अध्याय ६६-६७)

॥ प्रकृतिखण्ड सम्पूर्ण॥

---

*ॐ दुर्गेति चतुर्थ्यन्तं स्वाहान्तो मे शिरोऽवतु । मन्त्रः षडक्षरोऽयं च भक्तानां कल्पपादपः।
विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणे च मनोर्मुने॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः । मम वक्त्रं सदा पातु ॐ दुर्गायै नमोऽन्ततः॥
ॐ दुर्गे रक्ष इति च कण्ठं पातु सदा मम । ॐ ह्रीं श्रीं इति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम्॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इति पृष्ठं च पातु मे सर्वतः सदा । ह्रीं मे वक्षःस्थलं पातु हस्तं श्रीमिति संततम्॥
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा । प्राच्यां मां पातु प्रकृतिः पातु वह्नौ च चण्डिका॥
दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋते च महेश्वरी । वारुणे पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला॥
उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया । जले स्थले चान्तरिक्षे पातु मां जगदम्बिका॥
इति ते कथितं वत्स कवचं च सुदुर्लभम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे । यत् फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणे मुने।
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद् ध्रुवम् । लोकं च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति सङ्कटे॥
न तस्य मृत्युर्भवति जले वह्नौ विशेद् ध्रुवम् । जीवन्मुक्तो भवेत् सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरः स्वयम्॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम्। (प्रकृतिखण्ड ६७। ६$\frac{१}{२}$—१९$\frac{१}{२}$)